विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१५ जुलाई १९९६ अंक–७

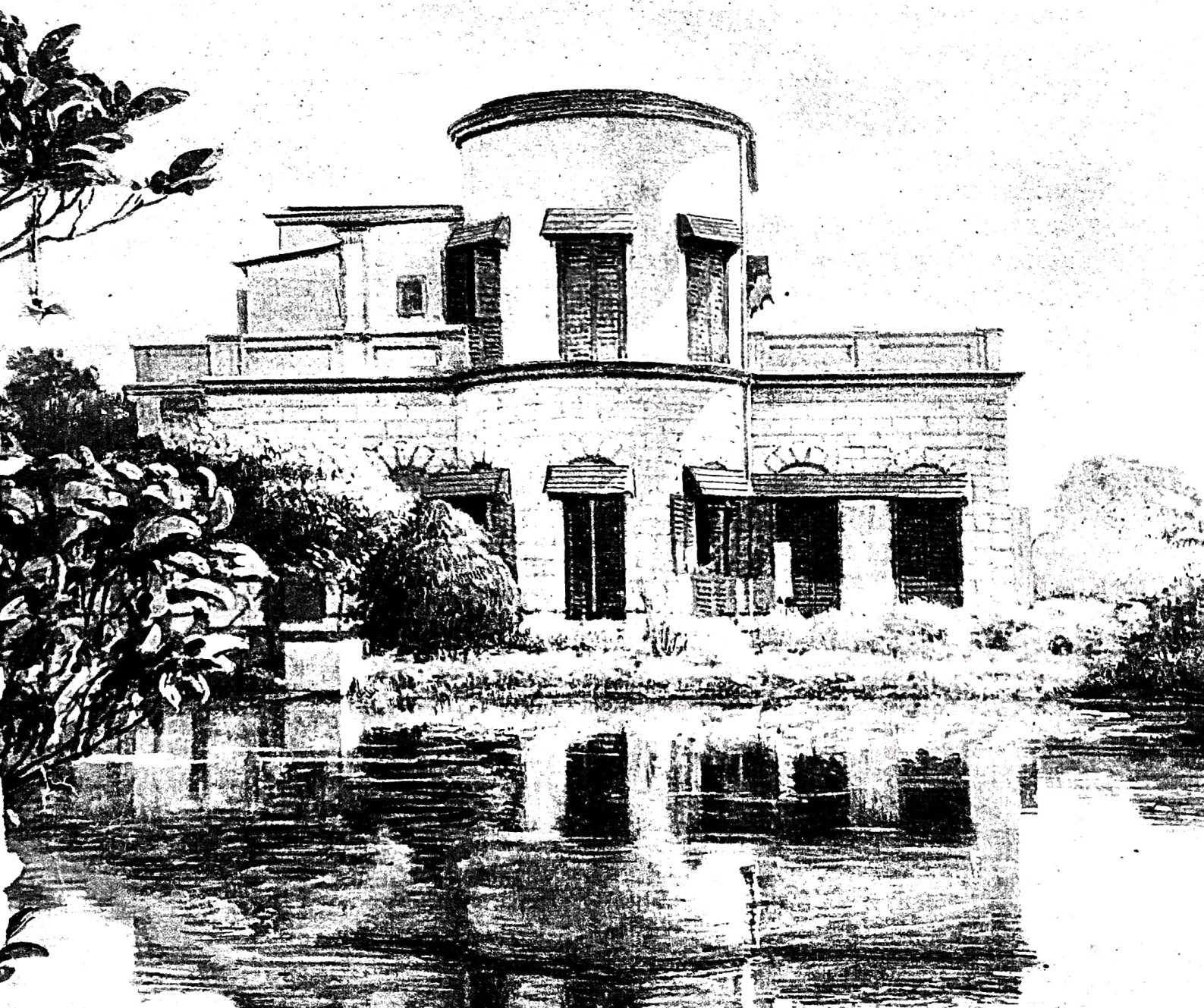

रामकृष्ण निलयम [illegible] पुरा ८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री जी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३ श्री पूनम चन्द्र जैन– लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा(आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२, महावीर बाल वाचनालय-चन्दावलनगर(राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल—नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६, सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नईदिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म०प्र०)
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६४. डा०(श्रीमती)रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ०प्र.)
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६७. कुमारी जसवीर कौर आहूजा पटियाला पंजाब
१६८. श्रीमती मंजुला बोर्दिया उदयपुर (राजस्थान)
१६९. श्रीमती सुरेश अम्बाला शहर (हरयाणा)
१७०. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ०प्र०)
१७१. श्री एस० टी पुराणिक नागपुर
१७२. श्री धन्नालाल अमृतलाल सालंकी कलवानी
१७३. डॉ० कमलाकांत बड़ोदा (गुजरात)
१७४. डॉ० विनया पेण्डसे उदयपुर (राजस्थान)
१७५. सन्तोष बोनी रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. गुरु वन्दना	स्वामी विवेकानन्द	२
३. कामारपुकुर में यात्रीनिवास	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द	३
४. समन्वय के अवतार श्रीरामकृष्ण	स्वामी मुख्यानन्दपुरी	६
५. आध्यात्मिक जीवन में प्रार्थना स्थान (२)	स्वामी यतीश्वरानन्द	९
६. विज्ञान एवं मानवीय मूल्य (३)	स्वामी रंगनाथानन्द	१५
७. बुद्धि और धृति	स्वामी योगात्मानन्द	१८
८. सद्गुरुशरण	आचार्य मदन साहित्यभूषण	२३
९. रामयण	स्वामी नित्यज्ञानानन्द	२६
१०. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ जुलाई—१९९६ अंक—७

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा – ८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जो गुरु के बारे में मनुष्य बुद्धि रखता है उसके साधन-भजन का क्या फल होगा ? गुरु के बारे में मनुष्य-बोध नहीं रखना चाहिए। इष्ट दर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं। फिर ये गुरु ही शिष्य को इष्टदेव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्टदेव को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर माँगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं। या अगर शिष्य चाहे तो वह उपास्य-उपासकरूपी भाव-सम्बन्ध को बनाए रखकर द्वैत अवस्था में भी रह सकता है। वह जैसा चाहे गुरु उसके लिए वैसा ही कर देते हैं।

(२)

जब तक हवा न बहती हो तभी तक लोग गरमी दूर करने के लिए पंखा झलते हैं, एक बार हवा बहने लगी कि पंखा नीचे रख देते हैं। साधना में भी जब तक ईश्वरीय सहायता न मिले तब तक साधक को स्वयं मेहनत करनी पड़ती है, ईश्वर की कृपा हो जाने पर फिर मेहनत नहीं करनी पड़ती।

(३)

बड़ा जहाज खुद भी आसानी से चला जाता है और साथ ही सामान से लदी बड़ी नावों और डोंगियों को भी खींच ले जाता है। इसी प्रकार अवतार-महापुरुष जब आते हैं तो अनायास ही बद्ध-जीवों को भवसागर के पार खींच ले जाते हैं।

गुरु-वन्दना

—स्वामी विवेकानन्द

नरदेव देव जय जय नरदेव।
शक्ति-समुद्र-समुत्थ तरङ्गं
दर्शित प्रेम विजृम्भितरङ्गं
संशय-राक्षस-नाश महास्त्रं
यामि गुरुं शरणं भववैद्यं
नरदेव देव जय जय नरदेव ॥१॥

अद्वयतत्व समाहित चित्तं
प्रोज्वल भक्ति परावृतवृत्तं।
कर्मकलेवरमद्भुतचेष्टं
यामि गुरुं शरणं भववैद्यं ॥
नरदेव देव जय जय नरदेव ॥२॥

भावार्थ—हे नरदेव, हे देव, हे नरदेव, आप की जय हो, जय हो। जो महाशक्तिरूपी समुद्र से उत्थित तरंगस्वरूप हैं, जिन्होंने प्रेम की लीला दिखायी है, जो सन्देहरूपी राक्षस के विनाश के लिए महा अस्त्र के समान हैं, उन भवरोग के चिकित्सक गुरु की शरण में मैं जाता हूँ ॥१॥

हे नरदेव, हे देव, हे नरदेव, आपकी जय हो, जय हो। जिनका चित्त अद्वैततत्व में समाहित है, जिनका चरित्र परम उज्ज्वल भक्तिरूपी वस्त्र द्वारा आवृत है, जिनका जीवन लोककल्याण में नियुक्त है, जिनकी कार्यावली अपूर्व है, उन भवरोग के चिकित्सक गुरु की शरण में मैं जाता हूँ ॥२॥

भाषण

कामारपुकुर में यात्रीनिवास

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानंदजी महाराज

(भगवान श्रीरामकृष्ण देव की अवतार-भूमि कामारपुकुर में नव-निर्मित भव्य यात्री-निवास का उद्घाटन करते हुए रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के परम अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने जो संक्षिप्त व्याख्यान दिया था उसे स्वामी विवेकानन्द द्वारा संस्थापित बंगला मासिक पत्रिका 'उद्बोधन' के मई, १९९६ अंक में प्रकाशित किया गया : उसी का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है। अनुवादक हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ।)

अख्यात अज्ञात एक भक्त के रूप में दो-एक मित्रों के साथ कामारपुकुर का पहलीबार दर्शन करने मैं कई वर्ष पूर्व यहाँ आया था। उस समय तक मैंने रामकृष्ण संघ में योगदान नहीं किया था। उन दिनों चाँपाडाँगा से पाँवपैदल कामारपुकुर आना पड़ता था। कलकत्ते से अन्य कोई रास्ता या परिवहन नहीं था। एकमात्र बैलगाड़ी थी, जिससे यातायात करने में बहुत समय लगता था। कामारपुकुर पहुँचकर गांव के लोगों से पूछा : "रामकृष्ण परमहंसदेव का घर कहां है ?" हमलोग उन्हें 'ठाकुर' कहते हैं। किन्तु गांव के लोगों को यह पसन्द नहीं पड़ेगा, ऐसा सोचकर थोड़ा सजा-संवार कर कहा : "रामकृष्ण परमहंस देव का घर कहां है ?" तब वे लोग आपस में एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। तात्पर्य था—'कहाँ रे ये लोग अब फिर किसकी बात कर रहे हैं ?' तब समझ पाया। पूछा : "रामलाल चटर्जी का घर कहाँ हैं ?" तब उन लोगों ने कहा : "ऐसा कहो, वह तो दिखाई पड़ रहा है !'

ठाकुर के घर की यह जो वर्तमान अवस्था अभी देखता हूँ, उन दिनों वह नहीं थी। निश्चय ही फूस का घर जैसा अभी है, वैसा तब भी था। ठाकुर के भतीजा शिबू-दादा (शिवराम चट्टोपाध्याय) उस समय घर पर थे। उन्होंने कहा : "भाई, जानते तो हो कि यहाँ शिव का संसार (निर्धनता) है।" मैंने कहा : "हाँ, शिबू-दादा, चिन्ता-फिक्र नहीं करनी होगी। हमलोग बाजार से मूढ़ी (लाई) और मिश्री खरीदकर ले आते हैं। वह सब लाकर उस संध्या और रात्रि में जितना खाना था खाकर ठाकुर के बैठकखाने में सोया। शिबू-दादा भी वहीं सोये। हम सब ने उसी बैठकखाने में स्थान पाया।

इसके बाद कालक्रम से अनेक परिवर्तन हुए। १९४७ ई० में यह मठ का केन्द्र बना। तदुपरान्त ठाकुर के मन्दिर की प्रतिष्ठापना हुई। मठ की स्थापना के बाद धीरे-धीरे घर-बाड़ी सब बने। किन्तु यात्रियों के ठहरने की कुछ खास व्यवस्था लम्बे अर्से तक नहीं हुई। जो थोड़ी-बहुत व्यवस्था

हुई। वह इस हालदारपुकुर के किनारे—कुछ कॉटेज मात्र। किन्तु उनमें कितने लोग समा पाते ? इसके बाद क्रमश: एक यात्री-निवास के निर्माण की भावना अनेक व्यक्तियों के मन में उठने लगी। किन्तु हमलोगों को अर्थाभाव था। बड़े पैमाने पर कुछ करने की सामर्थ्य नहीं थी, यहां तक कि कल्पना भी नहीं थी। तदुपरान्त धीरे-धीरे ठाकुर की इच्छा से घर-मकान, साधु-भक्तों के रहने की जगह और अन्त में यह विराट् यात्री-निवास भी बना।

श्रीरामकृष्ण ने कहा था : "यह जगह, यह जयरामबाटी-कामारपुकुर, इस पूरे क्षेत्र को आनन्द के कुहासे से भरा देखता हूँ।" "आनन्द का कुहासा !"—उनकी भविष्यद्वाणी है। यहाँ वही आनन्द का कुहासा लगेगा। ठाकुर ने कहा था : "इच्छा करने मात्र से मैं कामारपुकुर को सोने से मढ़ दे सकता था।" ऐसा वे कर सकते थे। किन्तु वे सर्वत्यागी थे। इसी से उस ओर उनका ध्यान नहीं था। उनका लक्ष्य भक्तों के कल्याण का पथ-प्रदर्शन करना था। उनलोगों (भक्तों) के भीतर उस भावना को उद्बुद्ध करने के लिए, जिससे वे लोग अपने जीवन की परम सार्थकता—परम चरितार्थता प्राप्त कर सकें, जीवन के लक्ष्य तक पहुँच सकें। उसी लक्ष्य तक पहुचने के लिए, आकांक्षा लेकर आज झुंड के झुंड यात्रीगण आते हैं, भक्तगण आते हैं—भारत-वर्ष के दूर दूरान्तर से तो आते ही हैं, समस्त विश्व के विभिन्न भागों से आते हैं। इस महातीर्थ-स्थान में आकर पवित्र होने के लिए वे लोग उद्ग्रीव होकर आते हैं, व्याकुलता लेकर आते हैं। किन्तु उनलोगों की सेवा के लिए इतने दिनों तक हमलोग कुछ खास व्यवस्था नहीं कर सके थे। इस यात्रीनिवास के निर्मित होने से वह दीर्घकालीन अभाव कुछ कम हुआ। किन्तु अभाव का यह कमना भी कुछ ही दिनों के लिए है। कारण, ठाकुर के भक्तों की संख्या सीमित नहीं है, सीमित रहेगी भी नहीं। दूर-दूर से और भी कितने भक्त आएँगे। उनलोगों के लिए प्रथम चरण में अन्तत: थोड़ी जगह हुई।

अभी यहाँ यात्रीगण आकर क्या देखेंगे ? देखेंगे ठाकुरका स्थान—उनलोगों के दीर्घकालीन कल्पनालोक का यहाँ वास्तविक प्रकाश। इस पवित्र वायुमण्डल में वे लोग कुछ आनन्दपूर्वक बैठ सकेंगे, रह सकेंगे। इसी के लिए है यह यात्री-निवास। इस यात्री-निवास की परिकल्पना जिन लोगों ने की, वे धन्य हैं। जिन लोगों की सहयोगिता से इस यात्रीनिवास का निर्माण हुआ, वे भी धन्य हैं। ठाकुर की कृपा उन सब लोगों पर बरसे, बरसे आज के एवं आगामी दिनों के समस्त यात्रियों के ऊपर।

ठाकुर के भक्त यात्रीगण कोई बहुत साधारण वस्तु नहीं हैं : भागवत में है, श्रीकृष्ण कहते हैं :

"निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥"
(११।१४।१६)

—निरपेक्ष, शान्त, निर्वैर, और समदर्शन मुनि (अर्थात् भक्त) का मैं सर्वदा अनुगमन करता हूँ। कारण, ऐसे व्यक्ति की चरणधूलि से मैं पवित्र होता हूँ।

भक्तों की चरणधूलि—भक्तरज: ! वे महान् हैं इसी से उनके भक्तगण भी महान् हैं। मैं भक्तों की स्तुति के लिए नहीं कहता हूँ। मैं कहता हूँ उन लोगों का स्मरण रखने के लिए। कितने विशाल आदर्श को उन लोगों ने जीवन में स्वीकार किया है ! इससे ठाकुर की कितनी कृपा उनलोगों पर परिस्फुटित

हुई है, यह जाना जाता है एवं वह सुयोग जिससे हम सबके—भक्त हों, साधु हों—जीवन में फलदायी हो सके इसके लिए उस भाव को लेकर यहाँ हम लोगों को आने की आवश्यकता है। हमलोगों को यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि यह महातीर्थ है। इस महातीर्थ में आने पर हमलोग अपने को धन्य मानते हैं। जो लोग परम आनन्द पाने यहाँ एक शुद्ध भाव लेकर आते हैं—उन लोगों को एक उपयुक्त परिवेश प्रदान करने का प्रयास कर इस यात्री-निवास का निर्माण हुआ है। मैंने पहले ही कहा है कि यह यथेष्ट नहीं है। तथापि धीरे-धीरे आज इतना बड़ा हुआ है। क्रमशः इसकी और भी विशाल परिणति होगी।

मैं ठाकुर के चरणों में, श्री माँ के चरणों में अपनी प्रार्थना निवेदित करता हूँ ताकि उन सब की कृपा से यह यात्री-निवास धन्य हो जाय। यहाँ इस महातीर्थ में जो आएँगे वे सब धन्य हो जायँ। वे सब श्री ठाकुर और माँ की कृपा का अनुभव करें। श्री ठाकुर और श्री माँ के चरणों में पुनः प्रणाम और प्रार्थना अर्पित कर मैं अपनी वाणी को विश्राम देता हूँ।

बोध-कथा

निर्धन का धन

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उन दिनों 'अमृतधारा भवन' ग्वालमंडी लाहौर में ठहरे हुए थे। उनके दर्शन मात्र को सहृदयों का तांता बँधा रहता, वाग्देवी के नाना रूप उतर आते उन काव्य-संध्याओं में।

उस दिन की काव्य-संध्या अपने यौवन पर थी। सहसा किसी सहृदय के नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली। गुरुदेव ने रुदन का कारण पूछा। संताप कम होने पर उसने कहा, 'मुझ जैसा निर्धन व्यक्ति काव्य को कैसे समझ सकता है गुरुदेव। दो वक्त की रोटी तक नसीब नहीं होती।'

कुछ पल मौन रहने पर गुरुदेव ने प्रश्न किया, 'क्या तुम वास्तव में ही निर्धन हो ?'

'जी हाँ।'

तुम्हारे पास दो नेत्र है, इनमें से एक मुझे दे दो।'

'असंभव।'

'तो हाथ-पैर, कान-प्राण में से ही कुछ मुझे दे दो।'

'यह कैसे हो सकता है ? आनाकानी का स्वर निकला।'

'ज्ञान-इन्द्रियों, कर्म-इन्द्रियों और मन-हृदय जैसी अमूल्य संपदा के स्वामी होने पर भी अपने आप को निर्धन कहते हो।' गुरुदेव ने ओजस्वी वाणी में कहा।

और एक बार फिर अश्रुधारा फूट पड़ी। पर इस बात का रुदन पश्चात्ताप का था।

प्रस्तुति राज बुद्धिराजा (नवभारत टाइम्स से साभार)

समन्वय के अवतार श्रीरामकृष्ण

स्वामी सुख्यानन्द
पुरी (बलूड़ मठ)

जगत के इतिहास में यह देखने में आता है कि हर एक देश या जाति का एक प्रकृतिसिद्ध ध्येय होता है जो राष्ट्रजीवन में सर्वतोमुखी विकास पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह ध्येय अज्ञात रीति से हो या सुस्पष्ट भाव से, राष्ट्रीय जनता के कार्यकलापों तथा विचारधाराओं को अपनी सिद्धि की तरह खींचता रहता है। देश के आचार-विचार, वेषभूषा, संगीत-साहित्य, कला-विज्ञान, धर्म-दर्शन इत्यादि सब, अर्थात् देश की संस्कृति और सभ्यता, उस ध्येय से प्रभावित होकर उसी की दिशा में बढ़ते हैं। यह ध्येय राष्ट्र-शरीर का प्राण है। यदि इसकी विस्मृति हो जाए तो राष्ट्र पतनोन्मुख होता है। ऐसे मौके पर राष्ट्र की अन्तरात्मा के सतत तथा सामूहिक प्रयत्न के फलस्वरूप राष्ट्रशक्ति अपने ध्येय के रक्षणार्थ मूर्तिमान होकर एक महापुरुष के दैदीप्यमान जीवन की अलौकिक ज्योति राष्ट्र में छाये अन्धकार को मिटाकर उस राष्ट्र की ध्येय-सिद्धि की मार्गदर्शिका होती है। उस महापुरुष का असाधारण व्यक्तित्व राष्ट्र के अंगांगों में एक नई शक्ति का संसार कर देता है। जैसे वह महापुरुष राष्ट्र की पूर्वसंचित शक्तियों का आगार बनता है वैसे ही वह राष्ट्र के भविष्य-जीवन का आदर्श केन्द्र भी बनता है। और उस आदर्श से स्फूर्ति पाकर राष्ट्र की संस्कृति तथा सभ्यता का फिर से सर्वतोमुखी उत्कर्ष होता है। राष्ट्र-जीवन की कलियाँ फूल उठती है। ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं का निदर्शन हमें श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध, ईसा मसीह, पैगम्बर मुहम्मद इत्यादि महापुरुषों के जीवन में मिलता है।

आधुनिक काल में भारत में ऐसी आदर्शमूर्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस के रूप से अभिव्यक्त हुई।

अति प्राचीनकाल से बहती हुई भारतीय अध्यात्म-जीवन की गंगा से सहस्रों धारायें निकल कर विभिन्न मार्गों से बहती हुई कालक्रम में मूल-स्रोत से इतनी दूर तक पहुँच चुकी थीं कि लोग उनकी एकता तथा असली स्वरूप को भी भूल बैठे थे। जो भावनाएँ तथा आदर्श, जीवन को प्रगति-पथ पर ले जाते हैं उन्हें भी भूल जाने से भारतीय जीवन प्रवाह में गतिरोध आ गया था और वह प्राणहीन सा दिखाई दे रहा था। लोग कालगति से आदर्शच्युत होकर, त्याग-तपस्या एवं सेवा से वर्जित जीवन के कारण, अध्यात्म-जीवन के उच्च तथा उदात्त ध्येयों को ग्रहण तक नहीं कर सकते थे। धार्मिक जीवन में भिन्न-भिन्न मतों का परस्पर संघर्ष तथा विद्वेष ही दिखाई देता था। वेदोदित सुविशाल उदार तथा युक्ति-संगत, तथा अनुभवगम्य सनातन-धर्म का ह्रास हो गया था। समन्वय तथा सहानुभूति के स्थान पर परस्पर निन्दा तथा कलह ही मचे हुए थे। इस परिस्थिति के दो मुख्य कारण थे—१. भिन्न-भिन्न संस्कृति वाले विदेशियों के लगातार आक्रमण तथा अत्याचार और २. लगभग छह-सात सौ वर्षों तक भारत का राजकीय दासत्व। ऐसी अवस्था में श्रीरामकृष्ण ने राष्ट्र के लुप्त

आध्यात्मिक आदर्शों को अपने जीवन में उतार कर राष्ट्र के आध्यात्मिक जीवन को अनुप्राणित किया तथा प्रगतिशील बनाया। उनका जीवन समस्त-अध्यात्म तत्वों का आगार और वेद-वेदान्तों का प्रत्यक्ष तथा सजीव निदर्शन था। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है, "कालवश नष्ट हुए इस सनातन धर्म के सार्वलौकिक सार्वकालिक, तथा सार्वदेशिक स्वरूप को अपने जीवन में अभिव्यक्त करके विश्व के सम्मुख सनातन-धर्म के सजीव दृष्टान्त स्वरूप अपने जीवन को रखते हुए जनता के चिरहित के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण अवतीर्ण हुए।" अपने महान धर्म में श्रद्धाहीन तथा धर्म के बारे में भी परानुवर्तनशील बने हुए भारतीयों के मन में श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष उज्ज्वल आदर्श ने एक नया उत्साह भरा तथा सनातन-धर्म प्रणीत उदार अध्यात्म जीवन में नई उत्साहपूर्ण श्रद्धा उत्पन्न की।

श्रीरामकृष्ण के जीवन का अध्ययन किए बिना आधुनिक काल में वेद-वेदान्त तथा अन्य हिन्दू अध्यात्म शास्त्रों का अभिप्राय तथा मर्म पूर्णतया समझना कठिन है। उनका जीवन भारतीय धार्मिक विचारों पर स्पष्ट प्रकाश डालता है। वेदों तथा उनके ध्येयों के वह जीवन्त भाष्य थे। भारतीय धार्मिक जीवन का एक समय-कल्प उन्होंने अपने जीवन में समाविष्ट कर दिया था। उनमें परिपूर्णता सुशोभित थी। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सुविशाल और असंकीर्ण मनोभावना तथा लोक-सेवाभिलाषा—इन सब गुणों के वे मूर्त-स्वरूप थे। स्वामी विवेकानन्द जी के वचनों में, उनमें "श्री शंकराचार्य जी की अद्भुत एवं तीक्ष्ण, पारदर्शी मेधा तथा भगवान बुद्ध के विशाल एवं गम्भीर हृदय का ऐक्य हुआ था।" निरक्षर होने पर भी उनकी अनुभवी व तत्वदर्शी विशाल बुद्धि ने ऐसे महान तत्वों का आविष्कार किया जिनसे भारत के तथा विदेशों के परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले सब मत-संप्रदायों के समन्वय की संभावना हुई है। उनका उदार हृदय बोल उठा– "सब सम्प्रदायों में एक ही ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर आत्मा के रूप में विराजमान है।" उनका प्रेमपूर्ण हृदय समग्र विश्व के दीन, दुर्बल, दलित, दरिद्र तथा पतितों के लिए करुणार्द्र था। उनके मुख से ये अनुकम्पापूर्ण उद्गार निकले, "भूखे पेटों के सामने तत्वज्ञान का उपदेश विडम्बना मात्र है—उनको पहले चाहिए अन्नदान फिर ज्ञानदान। ....जीव और शिव एक हैं। जीवों की सेवा शिव-ज्ञान से करो। तुम्हारा आध्यात्मिक कल्याण इसी में है। भूल से यह अहंकार न करो कि तुम किसी की सहायता कर सकते हो जीवसेवा से केवल तुम भगवान को ही पूजते हो, अपने को ही धन्य बनाते हो।"

समन्वय के अवतार श्रीरामकृष्ण के मानस-सरोवर में अध्यात्म-जीवन की समस्त धाराएँ एकत्र होकर एक महाप्रवाह के रूप में निर्गत हुई जिससे धर्म क्षेत्र भारत सुफलित हुआ। श्रीरामकृष्ण ने किसी भी अध्यात्म मार्ग का तिरस्कार नहीं किया, प्रत्युत अपने जीवन के माध्यम से बताया कि मूढ़ता तथा अन्धविश्वासपूर्ण भासने वाले पंथों में भी वही सत्य छिपा है जो अति युक्तिसंगत भासने वाले उच्च मार्गों से स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने कहा, "जितने मत उतने पथ"। "यह अन्धविश्वास है"—ऐसा उद्गार उनके मुख से कभी नहीं निकला। इन उदार अनुपम गुणों के कारण विभिन्न अध्यात्म-पथगामी, श्रीरामकृष्ण में अपने-अपने आदर्शों की परिपूर्णता देखते थे। शैवों ने उनमें शिव का आभास पाया। वैष्णवों ने उनमें एक महान विष्णुभक्त को देखा। शाक्तों ने उनमें मातृभक्त शिशु को देखा। तांत्रिकों ने उनको तंत्रसिद्ध पाया। ईसाइयों ने उनमें ईसा का प्रतिरूप देखा। मुसलमानों ने एक सूफी पीर को पाया। मूर्तिपूजकों ने देखा कि

श्रीरामकृष्ण ने सारी धर्मसाधना काली मूर्ति की पूजा के द्वारा ही की और अद्वैतियों ने देखा कि वह समस्त नाम रूप के परे निर्गुण-निराकार ब्रह्म में सदा लीन रहते थे। श्रीरामकृष्ण भक्तों को अनन्य भक्त जान पड़ते थे तो ज्ञानियों को परमज्ञानी। कर्मनिष्ठ जनता ने उनमें एक बड़े कर्मयोगी को देखा तो योगीजन उनकी सदा सहज समाधि मग्न पाते थे। श्रीरामकृष्ण-रूपी निर्मल आदर्श (आइना) में सारे मतावलंबियों ने अपने-अपने आदर्शों, ध्येयों का प्रतिरूप स्पष्ट देखा और अनुभव किया।

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन में समस्त विश्व के आध्यात्मिक आदर्शों का ऐक्य किया। इसके अलावा उन्होंने अपने अथाह अनुभवी ज्ञान के द्वारा परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले ज्ञान-मार्ग तथा भक्तिमार्गों का सरलतापूर्ण शब्दों में अनोखे ढंग से समन्वय किया और सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, आत्मा-परमात्मा, जीव-शिव, ब्रह्म और शक्ति इन भावनाओं का सामंजस्य दिखाया। उन्होंने बताया कि द्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा अद्वैत एक ही अध्यात्म सोपान की पद-परम्परा हैं। वस्तु एक ही है। दृष्टिकोण का ही विभेद है। फिर "जो ब्रह्म है वही काली, वही शक्ति है। भगवान मातृभाव से उसी प्रकार पूजे जा सकते हैं जैसे पितृ-भाव से। जो सगुण-साकार भगवान है, वही निर्गुण-निराकार ब्रह्म भी—जैसे पानी और बर्फ। शिव या शक्ति, या ब्रह्म और माया एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। ब्रह्म जितना आवश्यक है उतनी ही माया भी, शिव की जितनी आवश्यकता है उतनी ही शक्ति की भी। "एक राम, अनेक नाम'। विभेद केवल दर्शकों के दृष्टिकोण तथा अवस्था विशेष से ही प्रतिभात होता है। पूर्णज्ञान में भेद मिट जाते हैं।" श्रीरामकृष्ण ने बताया कि ज्ञानी और भक्त के परे विज्ञानी है। और वही विज्ञानी है जो उपर्युक्त रीति से पूर्णतः भगवत्तत्व का साक्षात्कार कर चुका हो तथा भगवान का नित्य तथा लीला स्वरूपों में तुल्य भाव से तथा सहज तन्मय होता हो। वे स्वयं ऐसे एक महान विज्ञानी थे यह सुस्पष्ट है। जहाँ महायोगी-पुरुष भी बहुत प्रयत्न से समाधिस्थ रहना चाहते हैं, वहाँ उनका यह सतत प्रयत्न रहता था कि सहज समाधि की अवस्था से मन को बलपूर्वक कुछ निम्नस्तर पर लाऊँ जिससे लोक-कल्याण हो सके, भक्तों के साथ आनन्द कर सकूँ।

श्रीरामकृष्ण केवल संन्यासियों के आदर्श नहीं थे। पूर्ण जितेन्द्रिय, वैराग्य-सम्पन्न, काम-कांचन परित्यागी, भक्तिज्ञान के शिरोमणि विज्ञानी होने पर भी वह चारों आश्रमों के आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के लिए आदर्शभूत थे। आदर्श संन्यासी होते हुए भी उन्होंने अपनी पूर्व-विवाहिता पत्नी को दूर नहीं हटाया। प्रत्युत अपने अस्खलित ब्रह्मचर्य के द्वारा उसे शिष्या के रूप में पास ही रखकर गृहस्थों के लिए आदर्श दाम्पत्य का पाठ सिखाया—पत्नी सहधर्मिणी है और पति-पत्नी का परस्पर धर्मजीवन में सहायक बनना कर्त्तव्य है। इस प्रकार श्रीराम-कृष्ण ने अध्यात्म-जीवन की एक नयी ही सामाजिक प्रणाली आरम्भ की। विश्वभर में श्रीरामकृष्ण के इस जीवन के संदेश वाहक तथा घोषणाकारी श्री स्वामी विवेकानन्द जी के वचनों में, "यह नव-युगधर्म समस्त जगत के, विशेषतः भारतवर्ष के अनन्त कल्याण का कारण है और इस नव-युगधर्म के प्रवर्तक भगवान श्रीरामकृष्ण इतः पूर्व हुए समस्त युगधर्म-प्रवर्तकों के पुनर्निर्मित तथा सुसंस्कृत स्वरूप है। हे मानव, इसमें विश्वास रखो और इसे हृदयस्थ करो। समस्त प्रकार के संशयों को दूर करके इस धर्मचक्र-प्रवर्तन के लिए कार्यरंग में कद पड़ो।"

आध्यात्मिक जीवन में प्रार्थना का स्थान (२)

—स्वामी यतीश्वरानंद

अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

भक्त के भगवत्प्रेम की गहराई

पाप-बोध तथा भगवान् की क्षमाशीलता में विश्वास मानव की आध्यात्मिक प्रगति के लिए विकास के एक स्तर विशेष पर निश्चय ही आवश्यक है। लेकिन हिन्दू धर्म के उच्च दार्शनिक स्तर पर ये बातें अधिक महत्व नहीं रखतीं; क्योंकि सभी हिन्दू सम्प्रदाय और मतवाद मानव के आत्म-स्वरूप की अन्तर्निहित, दिव्यता, पवित्रता तथा सर्वबन्धन मुक्तता में विश्वास करते हैं। हिन्दू भक्त का हृदय भगवत्-प्रेम, भगवत् मिलन तथा आत्मा की मुक्ति के लिए अन्य सभी बातों से कहीं अधिक उत्सुक रहता है। वह सगुण-निर्गुण परमात्मा के सगुण रूप को अधिक महत्व देता है।

वह भगवान् के जीवन्त संस्पर्श में आना चाहता है, उनके साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित करना चाहता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयास में वह अनेक प्रकार के भावों और दृष्टिकोणों का आश्रय लेता है, जिनकी गहराई का अंकन बाहर से देखने से नहीं किया जा सकता। उसके अनुसार भगवान् सर्वव्यापी जगदाधार, जगत् स्रष्टा मात्र नहीं हैं, बल्कि प्रेममय भी हैं, जो भक्त के साथ पिता, माता, स्वामी, सखा, और सन्तान के रूप में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर दिव्य लीला करते हैं। वह प्रियतम के साथ मिलन के लिये अपने अन्तस्थल से लालायित हो रही मानवात्मा के चिरन्तन-प्रियतम के रूप में भी लीला करता है। यह उत्कन्ठा, यह तीव्र लालसा भक्ति कहलाती है, जिसे नारद ने 'अनिर्वचनीय' (अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम्। नारद भक्ति सूत्र ४·५१,) कहा है, तथा समस्त कर्मों का भगवत् समर्पण और भगवान् के विस्मरण में परम व्याकुलता (नारद भक्ति सूत्र १ : १९) जिसके लक्षण हैं

सामान्यतः भक्त भगवान की माता, पिता या स्वामी के रूप में उपासना करते हैं। चिरन्तन प्रियतम का भाव उन लोगों के लिए संभव नहीं होता। लेकिन फिर भी कुछ ऐसे भाग्यवान् लोग होते हैं जो भगवान के प्रति ऐसा सर्वग्राही प्रेम करने में समर्थ होते हैं, जो अपने विस्तार में अन्य सभी भावों का समावेश लेते हैं तथा जिसमें उन्हें उच्चतम पूर्णता और अनुभूति होती है। यामुनाचार्य के हृदय से उठ रही यह प्रार्थना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है :

"न मृषा परमार्थमेव मे श्रृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥
(स्तोत्ररत्न ५०)

अर्थात्—हे नाथ, सर्वप्रथम मेरी प्रार्थना सुनो। मैं सत्य कहता हूं, असत्य नहीं। यदि आप मुझपर

दया न करें तो आपको मुझसे दयनीय और कोई नहीं मिलेगा।

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुहृत्
त्वमेव त्वं मित्रं गुरूरसि गतिश्चासि जगताम्।
त्वदीय स्त्वद् भृत्यस्तव परिजनस्त्वद् गति रहं
प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः॥
स्तोत्ररत्न, ६०

अर्थात्, तुम पिता हो, माता हो, पति और पुत्र भी तुम हो। तुम प्रिय सुहृद् हो, मित्र हो, गुरू हो और जगत की गति भी तुम हो। मैं तुम्हारा हूं, तुम्हारा सेवक, और परिजन हूं। तुम ही मेरी गति हो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूं, और हे प्रभु, मेरा भार तुम पर ही है।

चैतन्य महाप्रभु अतुलनीय आवेगपूर्ण प्रेम से प्रेमास्पद भगवान से प्रार्थना, करते हैं:

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम् जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्ति रहैतुकी त्वयि॥
(शिक्षाष्टकम् ४)

अर्थात्, हे जगदीश, न में धन, जन, सुन्दरी स्त्री अथवा कवित्व चाहता हूं। मैं केवल यही चाहता हूं कि जन्म-जन्म में मेरी आप के प्रति पूर्ण अहैतुकी भक्ति होवे।

हिन्दू आध्यात्मिक अनुभूतियों की व्यापकता

आह्लादकर भगवत् प्रेम की गहरी भावावस्थाएँ आत्म-विमोहक हैं, (आत्मा को विभोर कर देती हैं), लेकिन हिन्दू-भक्त की आध्यात्मिक अनुभूतियों का यहीं अन्त नहीं हो जाता। ऐसी असाधारण आध्यात्मिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी होते हैं जो निराकार और साकार दोनों की अनुभूतियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी आध्यात्मिक चेतना सीमित और संकुचित नहीं रह पाती। वे सभी भावों को स्वीकार करते है और भगवान के सभी रूपों का साक्षात्कार करते हैं। वे प्रियतम परमात्मा का विभिन्न रूपों में आस्वादन करते हैं। लेकिन कभी-कभी अनन्त की एक ज्वलन्त पिपासा उनकी आत्मा पर छा जाती है। वे निराकार की गहराई में डूबकर अपने को सच्चिदानन्द में विलीन कर देते हैं। और पुनः जागतिक स्तर पर लौटने पर वे सभी वस्तुओं में परमात्मा ज्योति का प्रतिबिम्ब दर्शन करते हैं, जिसके बारे में उपनिषद् में कहा गया है:

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र-तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य माता सर्वमिदं विभाति॥
मुण्डकोपनिषद २ : : १०

अर्थात्– वहाँ न सूर्य चमकता है न चन्द्र-नक्षत्रगण। न विद्युत्, फिर अग्नि का क्या कहना। उसके प्रकाश को प्रतिबिम्बित करते हुए सभी वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं। सारा विश्व उसके प्रकाश से प्रकाशित होता है।

सर्वान्तर्या भी में सर्वातीत का, सभी रूपों में एक नित्यसत्ता का, अनेकों में एक का, साक्षात्कार कर वे महापुरुष सभी से प्रेम, सभी की पूजा, तथा सभी का आनन्द लेते हैं। वे असीम और समीम दोनों के साथ परिचित होते हैं। शंकराचार्य के स्तवों और स्तुतियों में हमें इस सर्वव्यापी आध्यात्मिक दृष्टिकोण की झलक मिलती है। ये

महान अद्वैतवादी अपनी आत्मा की तरह सभी वस्तुओं के पीछे एक परमात्मा-सत्ता का दर्शन करते हैं। वे उसका ध्यान करते हुए अनुभव करते हैं कि वे ब्रह्म के साथ अभिन्न हैं :

प्रातः स्मरामि हृदिसं स्फुरदात्म तत्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्
यत्स्वप्न जागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूत संघः ॥

(श्रीशंकराचार्य कृत प्रातः स्मरण स्तोत्र-१)

अर्थात्, मैं प्रातःकाल अपने हृदय में ज्योतिर्मय आत्मतत्व का स्मरण करता हूं, जो सच्चित-सुख-स्वरूप है, परमहंस-संन्यासियों की परमगति और तुरीय है; जो स्वप्न जाग्रत, और सुषुप्त अवस्थाओं से परे, और नित्य है। मैं वही निष्फल ब्रह्म हूं, भूतों का समूह नहीं।

एक यथार्थ मंत्र द्रष्टा ऋषि, शंकर सभी ईश्वरीय भावों में एक ही परमात्म सत्ता को पहचानते हैं। वे गुरु को प्रणाम करते हैं, और उनमें भी उसी नित्य अनन्त सत्ता का दर्शन करते हैं :

विश्वं दर्पणदृश्यमान नगरी तुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायसा बहिरिवो द्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोध समये स्वाभानवेवा द्वयं
तस्मै श्रीगुरु मूर्तये नम इदं श्री दक्षिणामूर्तये ॥

श्री शंकराचार्य कृत दक्षिणाभूति स्तोत्र १

अर्थात् जो माया द्वारा निद्रा में विश्व को दर्पण में प्रतिबिम्बित नगरी की तरह अपने भीतर होते हुए भी बाहर देखता है, तथा जो प्रबोध के समय अपने अद्वय स्वरूप का साक्षात्कार करता है, उस मंगलमय गुरुरूप में प्रकट दक्षिणामूर्ति को मैं प्रणाम करता हूं।

शंकराचार्य की मान्यता है कि शिव, विष्णु तथा अन्यान्य देवी-देवता उस अनन्त को ही व्यक्त करते हैं, जो ससीम को सत्ता प्रदान करता है। शिव की स्तुति करते हुए वे कहते हैं :

परात्मानमेकं जगद्बीज माद्यं निरीहं निराकार
औंकारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते
यम विश्वम् ॥

—(श्रीशंकरकृत वेदसार-शिव स्त्रोत्र ५)

अर्थात् मैं उस एक अद्वय जगत् के अदि कारण, निरीह, निराकार, औंकारवेद्य परमात्मा का प्रणाम करता हूं, जो जगत की सृष्टि, पालन और विनाश करनेवाला ईश्वर है।

विष्णु के प्रति प्रगाढ़ भक्ति के साथ वे प्रार्थना करते हैं :

अविनयमपनय विष्णो तदमय मन शमय विषय
मृगातृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥

विष्णुषट्पदी १

अर्थात्, हे सर्वव्यापी प्रभु, मेरे अविनय को दूर करो, और मेरे मन को शान्त करो। विषय मृगतृष्णा को नष्ट करो। समस्त प्राणियों के प्रति दया का मेरे हृदय में विस्तार करो, और मुझे संसार सागर से पार करो।

वे आगे कहते हैं :

सत्यपि भेदापगमे नाथ लवाहं न मामकीनस्त्वम।
सामुद्रो हितरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥

विष्णुषट्पदी ३

अर्थात्, तरंगे सागर में विलीन होती हैं सागर तरंगों में नहीं। इसी तरह हे नाथ, समस्त भेदों के

समाप्त हो जाने पर मैं तुममें लीन होता हूं, तुम मुझ में नहीं।

इस महान अद्वैत वेदान्ती का हृदय माँ जगदम्बा की प्रेमपूर्ण पुकार के प्रति सबसे अधिक आकृष्ट होता है, और स्वयं को एक सामान्य भक्त मानकर वे अत्यन्त मार्मिक प्रार्थना करते हैं :

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं लेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥
(देव्यपराधक्षमापण—स्तोत्र ३)

अर्थात् हे जननि, पृथिवी में तुम्हारे अनेक योग्य पुत्र हैं, उनमें मैं एक अयोग्यतम पुत्र हूं। फिर भी हे शिवे, मेरा त्याग करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है, क्योंकि कुपुत्र जन्म ले सकता है, लेकिन कुमाता कभी नहीं होती।

और उसके लिये जगन्माता ही एकमात्र शक्ति हैं :

न जानानि दानं न च ध्यानयोगं न जानामि तंत्रं
न च स्त्रोत्र मंत्रम्।
न जानानि पूजां न च न्यासयोगं गति स्त्वं गतिस्त्वं
त्वमेका भवानि ॥
(श्रीशंकराचार्य कृत् भवान्याष्टकम् – ३)

अर्थात् हे माता, मैंने न दान किया है, न ध्यान और योग; न मैं तन्त्र जानता हूं न स्तोत्र-मंत्र जप करना। न मैंने पूजा की है, और न ही न्यासायि के द्वारा अंगशुद्धि। अतः हे जगदम्बे, तुम्हीं मेरी एकमात्र गति हो, एकमात्र गति हो।

लेकिन उनकी दृष्टि में कोमलतम भावनाओं की अद्भूत लीला के बावजूद भी माँ जगदम्बा ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं; और उनका मानवी रूप उसका एक प्रतिबिम्ब मात्र है। उसी जगदम्बा ने लीला के लिये एक अद्वितीय चैतन्य सत्ता को ईश्वर और जीवों में विभक्त कर दिया है। और उन्हीं की सत्ता में शंकराचार्य स्वयं को विलीन करना चाहते हैं :

कदा वा हृषीकाणि साम्यं भजेयु :
कदा वा न शमुर्न मित्रं भवानि।
कदा वा दुराशा विषूची विलोपः
कदा वा मनो मे समूलं विनश्येत् ॥
(देवी भुजंग स्त्रोत्र, २०)

अर्थात् हे जगदम्बे, कब मेरी इन्द्रियाँ संयत होंगी; कब मेरे लिये शत्रु अथवा मित्र नहीं रहेंगे, कब दुराशा-रोग का विलोप होगा, कब मेरा मन समूल नष्ट होगा ?

वस्तुतः हिन्दू स्तोत्रों एवं स्तुतियों का बुद्धि एवं प्रज्ञा सहित अध्ययन करने, पर हम वैदिक ऋषि के साथ सहमत होने को बाध्य होते हैं : "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। अर्थात् सत्य एक है विप्रगण उसे भिन्न-भिन्न रूप में व्यक्त करते हैं। (ऋग्वेद १ : १६४, ४६.) यही भाव शिव महिम्नः स्तोत्र के प्रसिद्ध श्लोक में इतनी स्पष्टता और सरलता के साथ व्यक्त किया गया है :

त्रयी सांख्यंयोगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रूचीनां वैचित्र्याहजुकुटिलनाना-पथ जुषां
तृणामेको गम्यस्त्वमति पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥

वेद, सांख्य, योग शैव और वैष्णव शास्त्रों में विभिन्न पथों का निर्देश है, जिनमें से लोग कुछ इसका या उसका चयन करते हैं। भक्त अपनी रूची की भिन्नता के कारण इन सीधे या टेढ़-मेढ़े

पथों का अनुसरण करते हैं लेकिन हे प्रभु, सभी नदियों के एकमात्र गन्तव्य सागर की तरह तुम ही सभी मनुष्णों के एकमात्र गन्तव्य है।

तात्पर्य यह है कि सभी साधकों के लिये किसी न किसी रूप में प्रार्थना आवश्यक है। यह जीव की ईश्वर-मिलन की लालसा की द्योतक हैं। साकार ईश्वर के प्रति जितना प्रेम और उसे पाने की जितनी लालसा होती है, उतनी ही निराकार अनन्त परमात्मा के प्रति भी हो सकती है। यह केबल अभिरूचि पर निर्भर करता है। भक्त की प्रार्थना अधिक मुखर और भक्तिपूर्ण होती है। ज्ञानी मूक रह सकता है, उसकी प्रार्थना शब्दों में अभिव्यक्त न भी हो। लेकिन उसका गहरा आन्तरिक मौन एक प्रकार की महान आन्तरिक प्रार्थना है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति में ये दोनों मनोभाव एक के बाद एक दिखाई देते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि अतीन्द्रिय अनुभूति की तीव्र लालसा हो। जो लोग मूक-प्रार्थना द्वारा इस पिपासा, लालसा को बनाये रखने में असमर्थ हैं, वे उपर्युक्त प्रकार की प्रार्थनाओं की सहायता ले सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, हमें अपनी प्रार्थनाओं में स्वार्थी नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार हम अपने लिये प्रार्थना करते हैं; उसी प्रकार हमें दूसरों के लिये भी प्रार्थना करना चाहिये। अपने प्रिय तथा निकट-बन्धुओं के लिए प्रार्थना करो। उसके बाद सज्जनों एवं आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए संघर्षरत लोगों के लिये प्रार्थना करो। और अन्त में सर्वत्र निवास कर रहे सभी प्राणियों के लिये प्रार्थना करो। सभी दिशाओं में शुभ संकल्पों का प्रसार करो। तुम से सभी दिशाओं में शान्ति और शुभेच्छा प्रसारित होवें।

स्वामी यतीश्वरानन्दजी अपने प्रवचनों और कक्षालापों के पूर्व प्रार्थनाओं और ध्यानांशों का पाठ किया करते थे। उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं : (संपादक)

सर्वव्यापी आनन्दस्वरूप सर्व हृदय निवासी परमात्मा को प्रणाम। वह भूत, वर्तमान् और भविष्य का ईशनकर्ता है। उसका साक्षात्कार कर व्यक्ति भयमुक्त हो शान्ति प्राप्त करता है। वह परमसत्ता, सत्स्वरूप, परमज्योति और परम आत्मा है। उसी सर्वव्यापी रसस्वरूप परमात्मा से हम सभी की उत्पत्ति हुई है, उसी में हम स्थिति हैं और उसी में हम लय हो जायेंगे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हम कुछ क्षणों के लिये देह और मन को तनाव रहितकर शान्ति से बैठें। अब हम सर्वव्यापी परमात्मा को प्रणाम करें। वह हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें। हम संसार के सभी महान् आचार्यों और सन्तों, उन आचार्यों और सन्तों को प्रणाम करें जिनके उपदेश हमें धरोहर के रूप में प्राप्त हुए हैं। वे हममें सत्य की स्पृहा जगावें।

परमात्मा पवित्रता स्वरूप हैं। हम पवित्रता के स्पन्दनों को निःश्वास के साथ भीतर लेवें, वे हमारी सारी अपवित्रता को नष्ट करें। हम प्रश्वास द्वारा पवित्रता के स्पन्दनों को बाहर छोड़ें। हम बल के स्पन्दनों को भीतर खींचे; वे हमारी सारी दुर्बलता नष्ट करें। हम बल को निःश्वास द्वारा बाहर निकालें। हम शान्ति के स्पन्दनों को भीतर लें; वे हमारी सारी चंचलता नष्ट करें; हम शान्ति के स्पन्दन बाहर निःश्वसित करें। हम पवित्रता, बल और शान्ति को पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, दिशाओं में अपने सहमानवों के प्रति प्रवाहित करें। हम स्वयं शान्त होवें तथा समग्र विश्व में शान्ति विस्तार करें।

अब हम साक्षी अथवा दर्शक के भाव का अवलम्बन लें तथा मन को सभी विक्षेपों, ध्वनियों तथा अन्य कठिनाईयों से विलग करें। हम सभी विचारों, कल्पना चित्रों एवं मन में उठ रही भावनाओं से भी स्वयं को पृथक् करें। हम पूर्ण-सजग रहें। हमारी देह भगवान् का एक मन्दिर है। हम चेतना को हृदय रूपी गर्भ गृह में एकाग्र करें तथा वहाँ एक छोटे ज्योतिपुंज की तरह अपनी आत्मा का अनुभव करें। यह क्षुद्र ज्योतिपुंज सर्वत्र प्रकाशित हो रही है अनन्त ज्योति का एक अंश है। अनन्त परमात्मा सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रों में व्याप्त है। परमात्मा सभी प्राणियों में विराजित है। वह हमारे नेत्रों, कर्णों तथा अन्य इन्द्रियों में व्याप्त है। परमात्मा हमारे मन में प्रकाशित हो रहा है। वह हमारे हृदय में विद्यमान है। हम उसके साथ संपर्क का अनुभव करें।

अद्वैतवादी परमात्मा का अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में ध्यान करता है। भक्त उसी परमात्मा को जगत्पिता भक्त उसी सच्चिदानन्द की पिता, माता, सखा, प्रियतम के रूप में पूजा-उपासना करता है। अनन्त सच्चिदानन्द महान देवी-देवताओं का रूप धारण करता है। वह पुनः मानवजाति के कल्याण के लिये पृथ्वी पर मानो ईश्वरावतार बन कर आता है। हम ध्यान के लिये किसी भी भाव का अवलम्बन कर सकते हैं, लेकिन ध्यान करते समय हम अनुभव करें कि ध्याता और ध्येय एक अनन्त सच्चिदानन्द में निमग्न हैं।

वस्तुतः एक ही अनन्त परमात्मा एक ओर भक्त और दूसरी ओर भगवान के रूप में अभिव्यक्त होता है। हम अपने हृदय के अन्तस्थल में भगवत-संस्पर्श का अनुभव करें, और भगवान की वहां अवस्थिति हमारे स्नायुयों को शीतल, मनों को शान्त और हृदयों को विश्राम प्रदान करें। परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें और हमारी चेतना को उद्बुद्ध करें।

हम, कुछ क्षणों के लिए सर्वव्यापी आनन्दस्वरूप परमात्मा का उनके किसी भी रूप का जो हमें अच्छा लगे, जिस प्रकार से हमारी इच्छा हो, ध्यान करें। लेकिन हम अवश्य भगवत् संस्पर्श का अनुभव करें।

सर्वव्यापी, आनन्दस्वरूप परमात्मा, जो आत्मा का भी आत्मा है, हम सभी की रक्षा करें, हम सभी का मागदर्शन करें, हम सभी का पोषण करें। हम जो ज्ञान प्राप्त करें, वह उनकी कृपा से तेजस्वी और फलप्रसूत हो। हम सभी में परस्पर शान्ति और सद्भाव स्थापित हो। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हे प्रभु, सभी साधना पथ सच्चिदानन्द रूप सागर तक जाने वाली नदियों के समान हैं।

तुम हमारी आत्माओं की आत्मा हो।

तुम्हीं हो माता, पिता तुम्हीं हो, तुम्हीं हो बन्धु सखा तुम्हीं हो।

तुम्हीं हो विद्या, धन तुम्हीं हो, हमारे सर्वस्व तुम्हीं हो।

हमें असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले चलो।

हमारी आत्मा के अन्तरतम प्रदेश में प्रकाशित होओ, और आपकी प्रेरक सत्ता से हमें धन्य करो।

हम अपने हृदय के अन्तरतम प्रदेश में आपका साक्षात्कार करें। हम आपका अपने सभी सहप्राणियों में दर्शन करें। सब में विराजित आपको हम प्रेम करें और उनमें आपकी सेवा करें।

संसार में शान्ति विराजे। सभी भयमुक्त होवें। सभी शुभ का साक्षात्कार करें। सभी सद्विचारों द्वारा प्रेरित हों। सभी सर्वत्र सुखी होवें। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः। □

विज्ञान और मानवीय मूल्य (३)

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज
उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन
अनुवादक : डॉ० सुरेशचन्द्र शर्मा
ग्वालियर

३. धर्म—आध्यात्मिक विकास का विज्ञान

सभी मूल्य आध्यात्मिक विकास के उपफल हैं, और ये मूल्य मानव जीवन को व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप में प्रदीप्त करते हैं। यहाँ तक कि पारिवारिक जीवन में कभी य पति और पत्नी के बीच भी सम्बन्धों को प्रदीप्त करते हैं। यदि मूल्यों की अभिव्यक्ति पति या पत्नी के भीतर से होती है तो हम पारिवारिक जीवन में पूर्ण समरसता देखेंगे। परन्तु यदि मूल्य अवरुद्ध हो गये हैं, तो पारिवारिक जीवन में हम केवल बाह्य बंधनों से जुड़े रहेंगे, जिसमें प्रेम का अभाव होगा तथा समरसता एवं प्रसन्नता विलुप्त रहेगी। एक दूसरे में प्रविष्ट हो जाने की क्षमता, जो कि सच्चा प्रेम है, एक आध्यात्मिक क्षमता है। शारीरिक दृष्टि से हम एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते। परन्तु प्रेम वह क्षमता है जिसके द्वारा आप दूसरे व्यक्ति में तथा दूसरे व्यक्ति को आप अपने में प्रविष्ट होने देने में समर्थ हैं। यही वह वस्तु है जिसका मानव विकास की आधुनिक पाश्चात्य अवधारणा में अभाव है। वह बर्ट्रेंड रसेल थे जिन्होंने कहा था कि स्त्री और पुरुष बिलियर्ड वाल्स की तरह हो गये हैं। एक बिलियर्ड बॉल का दूसरी बाल के साथ एकमात्र संबंध टकराव है। वे एक दूसरे से टकराती हैं। वे यह नहीं जानती कि एक दूसरे में प्रविष्ट कैसे हुआ जाय। बिलियर्ड बाल्स की तरह मनुष्यों का व्यवहार है, इसमें आप मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति का अभाव पाते हैं, वे इन्द्रिय परायणता के अभिशाप के कारण, आनुवांशिकी सीमित अहं के दुष्प्रभाव के कारण अवरुद्ध हो गये हैं। जब कभी भी हम प्रबन्ध कार्य में सफल संगठित कार्य को देखे तो निश्चित जान लें कि सम्बन्धित व्यक्तियों में बहुत कुछ आध्यात्मिक विकास है बिना पर्याप्त आध्यात्मिक विकास के आप कभी भी सफल संगठित कार्य नहीं कर सकते। इस शरीर समुदाय के परे, इस समुदाय के अधिष्ठान अहं के परे कुछ न कुछ विकास हो गया है। यह आध्यात्मिक विकास कहलाता है। विकास एक विलक्षण संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है—बुद्धि, उन्नति, विस्तार नर-नारियों का शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास।

भारत में, हमारी शिक्षा में क्या हो रहा है। हम शारीरिक दृष्टि से विकसित हो रहे हैं, हम बौद्धिक दृष्टि से भी विकसित हो रहे हैं, यद्यपि यह सृजनात्मक नहीं हैं। परन्तु आध्यात्मिक विकास बहुत कम है। इसी कारण हम प शानियों में हैं, हम अपनी समस्याओं को हल करने में समर्थ नहीं हैं। पश्चिम में, धर्म में उनकी औपचारिक अभिरुचि उतनी नहीं थी, परन्तु उनमें आध्यात्मिक विकास

का यह प्रथम आयाम था। परोपकार, सेवा की भावना, "मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ" वाला दृष्टिकोण। इसी कारण विज्ञान और तकनीकी पश्चिम में इतना अच्छा कर सकी जैसे, गरीबी तथा मानव की दयनीय दशा को दूर करना। भारत में विज्ञान और तकनीक ने हमारे लिए यहाँ उतना नहीं किया। आध्यात्मिक आयाम में, मनुष्य के प्रारम्भिक विकास में हमलोग उनसे बहुत पीछे हैं, जिसके द्वारा हम दूसरों के लिए अनुभव करें, साथ-साथ कार्य कर सकें, तथा धन, समृद्धि उत्पन्न कर सकें। जब मैं प्रतिवर्ष हालैण्ड जाता हूँ तो, मैं उसे एक अति उन्नत देश के रूप में पाता हूँ—स्वच्छ, एक भी गरीब नहीं, एक भी भूखा जानवर कुत्ता या बिल्ली भी नहीं। यह उन्होंने कैसे प्राप्त किया बहुत कुछ आध्यात्मिक विकास द्वारा। वे भौतिकवाद की बात भले ही कहीं करते हों, परन्तु वह बिल्कुल ऊपरी है। उन्हें परेशान करने वाली, उनके यहाँ अन्य समस्याएँ हो सकती हैं, परन्तु एक मानव समुदाय के रूप में जैसे वे विकसित हुए हैं यहाँ हम विकसित नहीं हुए। आज हमारे लिए यह एक बड़ी चुनौती है। विज्ञान और तकनीक हम एक बड़े स्तर पर पढ़ रहे हैं। वस्तुतः हमारी एक गौरवमय उपलब्धि यह है कि हमारा राष्ट्र विश्व में आज तीसरी वैज्ञानिक तकनीकी परन्तु उसका फल क्या है। भारत में, इस प्रचण्ड तकनीकी जन-शक्ति के होते हुए भी इसने हमारी निर्धनता तथा हमारी लगभग आधी जनसंख्या के जीवन स्तर की दयनीयता को हल नहीं किया है।

अतः मानव विकास को प्रभावित करने के लिए उच्च तकनीकी जन-शक्ति रखना ही पर्याप्त नहीं है। हमें उस जनशक्ति की गुणवत्ता को भी ऊँचा उठाना है, और यहीं आध्यात्मिक विकास की अधिकता की आवश्यकता है, मूल्यों की ओर उन्मुख होने की आवश्यकता है, मनुष्य के प्रति सहानुभूति तथा अपने ज्ञान एवं अपनी प्रतिभा को अपने देश बन्धुओं की दशा को सुधारने के लिए उपयोग करने की भावना की आवश्यकता है। मात्र बौद्धिक शिक्षा ने जो कुछ दशकों से हमारे यहाँ रही है, हमारे हृदय का विस्तार, दूसरों से प्रेम करने की, दूसरों के लिए कार्य करने की क्षमता प्रदान नहीं की हैं, यही कारण है कि हमारी समस्याएँ हमेशा बढ़ती ही जा रही हैं जिन समस्याओं को पश्चिमी लोगों में उतनी ही जनशक्ति द्वारा हल कर लिया है तथा सुखी राज्य की स्थापना भी कर ली है। मानव विकास के दैहिक स्तर पर, तथा इन्द्रिय स्तर पर अवरोध से उत्पन्न उनकी अन्य समस्याएँ हो सकती हैं। उन्हें अभी भी आत्मा के रूप में अनन्त आत्मा के रूप में, मानव की उच्च अवधारणा का विकास करना है। इसी कारण, वे भारत में इन्हीं विचारों कि खोज में लगे हुए हैं। एक बहुत सुन्दर मानव प्रयास मैंने आज पश्चिम में सर्वत्र देखा वह है जिसे आप सामग्रिक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास कह सकते हैं मनुष्य को समग्र समझना तथा मानव समस्याओं को उसी सामग्रिक दृष्टि से हल करना।

यह सामग्रिक दृष्टिकोण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फैल रहा है—सामग्रिक स्वास्थ्य, सामग्रिक मनोविज्ञान सामग्रिक यह, सामग्रिक वह। पहले, वे मनुष्य का अध्ययन खण्डों में कर चुके थे, अब उसे समग्र रूप में देखने के लिए जोड़ना चाहते हैं। भारत में, हमारे लिए यह हमारी राष्ट्रीय विरासत है। हमने मनुष्य को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई के रूप में देखा था। आप इसे हमारे शास्त्रीय चिकित्सा विज्ञान में, हमारे समाजशास्त्र में यहाँ तक कि हमारे आर्थिक विचार में भी देख सकते हैं। परन्तु हम उस भारतीय दृष्टिकोण को भूल गये हैं, हमारा उससे संबंध टूट गया। हमें उसे पुनः प्राप्त करना है। अपनी शिक्षा

में, हमें इस सामग्रिक दृष्टिकोण को लागू करना चाहिए, ताकि व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि के साथ ही आध्यात्मिक दृष्टि से भी विकसित हो सके। इसलिए, विवेकानन्द ने धर्म की सुन्दर, वैज्ञानिक परिभाषा दी : "मनुष्य में पूर्व से ही निहित देवत्व की अभिव्यक्ति ही धर्म है।" प्रत्येक मनुष्य में दैवीय अंश हैं। यह कोई मत नहीं, यह कोई सिद्धान्त नहीं, यह कोई मान्यता नहीं, यह मानव सत्य है, एक सत्य जिसे आप अपने लिए देख सकते हैं उसे परख सकते हैं। उपनिषद इस महान सत्य को इसी प्रकार प्रस्तुत करते हैं। विवेकानन्द ने कहा : प्रत्येक मनुष्य अव्यक्त ब्रह्म है एवम् जीवन का लक्ष्य इस अन्तर्निहित ब्रह्मत्व को अभिव्यक्त करना है। व्यक्ति की शिक्षा के सम्बन्ध में व्यक्ति को पूछना है : क्या इस देवत्व को मैंने अल्पमात्रा में भी अभिव्यक्ति कर दिया है? यदि शिक्षा इस गहन आयाम की अभिव्यक्ति नहीं करती तो शिक्षा समाज के लिए घातक हो जाती है। केवल बौद्धिक ज्ञान व्यक्ति और समाज के लिए घातक है। बहुत से पाश्चात्य चिंतक इस प्राचीन सत्य पर बल देने लग गये हैं : बर्टेंड रसेल कहते हैं "मनुष्य जानकारी में आज जितना उन्नत हुआ है उतना ही उन्नत यदि वह विवेकशीलता में नहीं हो जाता है तो जानकारी की अभिवृद्धि दुःखों की अभिवृद्धि का ही कारण बनेगी।" —(Impact of Science on Society P. P. 120-21)

□

सत्संग

एक बार की बात है। सुफियान ने महात्मा फजल के साथ सारी रात धर्म-चर्चा में व्यतीत कर दी। दूसरे दिन चलते समय उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा 'आज की रात्रि को मैं अत्यन्त सुखदायिनी समझता हूँ कि धर्म चर्चा चलती रही। कितना आनन्दमय सत्संग रहा?'

नहीं, नहीं! आज की रात्रि तो व्यर्थ में चली गयी। फजल ने जवाब दे दिया।

वह कैसे? चिन्तित होकर सुफियान ने पूछा।

फजल ने कहा—'सारी रात तुमने वाणी-विलास से मुझे संतुष्ट करने में और मैंने तुम्हारे प्रश्नों का अच्छे से अच्छा उत्तर देने में बिता दी। इस प्रयत्न में हमलोग भगवान को ही भूल गये। एक-दूसरे को प्रसन्न करने वाले सत्संग की अपेक्षा अत्यधिक कल्याणकर तो प्रभु स्मरण है।'

—धर्मनाथ सिंह

बुद्धि और धृति

—स्वामी योगात्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, शिलांग (मेघालय)
अनुवादिका—सौ० ज्योत्स्ना किरवई
४०, अम्बाझरी ले आउट, नागपुर-१० (महाराष्ट्र)

(मई १९९५ के 'जीवन-विकास' में प्रकाशित मराठी लेख का हिन्दी अनुवाद)

वह पूर्ण रूपेण निराश हो चका था। क्या किया जाय, यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। उसका बहुत बड़ा नुकसान हो चुका था। व्यापार व्यवसाय में वह इतने वर्षों से कार्यरत था पर इससे पहले उसका इतना बड़ा नुकसान कभी भी नहीं हुआ था।

नये साल के स्वागत हेतु नवम्बर में ही उसने सुन्दर तथा आकर्षक दैनन्दिनियाँ बहुत बड़ी संख्या में मँगायी थी जिसमें उपयुक्त जानकारियाँ सुन्दर अक्षरों में छपवाकर उनकी उपयोगिता को बढ़ाने की पूर्ण कोशिश की थी। प्रत्येक डायरी के लिए उत्पादन खर्च १५ रुपयों से कुछ अधिक ही पड़ा था। विशेष लाभ की आशा में उसने अपनी दुकान के बाहर एक बड़ा सा बोर्ड लगवाया—

नये वर्ष का स्वागत कीजिए

सुन्दर, आकर्षक, बड़े आकार की डायरी लीजिए

मूल्य सिर्फ २५ रु०

जल्दी कीजिए

स्टाक सीमित है।

कुछ दिनों पश्चात उसे सामने वाली दुकान पर ठीक वैसा ही बोर्ड दिखाई दिया। सिर्फ वहाँ डायरी की कीमत लिखी हुई थी मात्र १५ रु०।

'ऊँह- रद्दी माल होगा, नहीं तो १५ रु० में भला अच्छा माल कौन देगा भला' उसने मन-ही-मन सोचा।

पर ग्राहक इसके यहाँ आते, डायरी देखते पर सामने की दुकान में जाकर १५ रु० वाली डायरी ही खरीदते। बहुत दिनों तक यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अतः खुद ही उसने सामने की दुकान में जाकर डायरी देखी। एकदम उसी की दुकान जैसी डायरियाँ उसके यहाँ थीं। वैसी ही सुन्दर और आकर्षक। उपयुक्त जानकारियों से भरी हुई। बल्कि कागज तो उससे भी थोड़ा अधिक ही अच्छे दर्जे का था।

वह असमंजस में पड़ गया। उसकी दुकान की २५ रु० वाली डायरियाँ वैसी की वैसी ही रह गयीं और देखते ही देखते सामने वाली दुकान की डायरियाँ खत्म होने लगीं। नये साल की शुरुआत के पहले ही उस दुकान का पूरा माल खत्म हो चुका था।

आखिर इस दुकानदार से रहा नहीं गया। वह सामने वाले दुकानदार के यहाँ गया और बोला—"क्यों भई गोपाल सेठ ? किस तरह का धंधा कर रहे हैं आप ? जिस डायरी का उत्पादन खर्च ही १५ रु० से कम नहीं उसे ही १५ रु० में कैसे बेच रहे हैं ? इतना नुकसान सहन क्यों कर रहे हैं आप ? आपने अपना खुद का नुकसान तो कर ही लिया और मेरा तो दिवाला ही निकलवा दिया ? क्यों किया आपने ऐसा ? हम-तुम इतने सालों से पड़ोसी हैं फिर क्या यह सब उचित है ?

हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! नुकसान का धंधा कर भला मैं गोपाल सेठ इतनी बड़ी-बड़ी इमारतें बनवा सकता हूँ क्या ? हाँ—हमलोग ईमानदारी का धंधा करते हैं। ज्यादा फायदा नहीं लेते। हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! दस रुपये में डायरी बनवायी और १५ रु० में बेची।

"दस रु० में डायरी बनवायी ? ये क्या कह रहे हैं आप। नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ? आप फिर से हिसाब करके देखिये तो सही। कितनी भी कटौती करो पर यह डायरी १५ रु० से कम में तो बन ही नहीं सकती।"

"हमको तो दस के ऊपर एक पैसा भी नहीं लगा। ईश्वर की सौगंध ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ।" हँसते-हँसते गोपाल सेठ ने कहा।

"बताइये तो सही, वैसा कैसे संभव हो सका ? मुझे तो १५ रु० से थोड़ा अधिक ही लगा। आपकी डायरी का कागज भी मेरी डायरी की अपेक्षा अच्छा ही है। क्या करामात की आपने, बताइये तो सही····"

है: है:····· वो तो नहीं बता सकता Trade secret है हमलोगों का।"

बहुत ही अधिक मिन्नतें करने के बाद आखिर गोपाल सेठ ने अपना Trade secret बता ही दिया। वैसे भी डायरियों का सीजन खत्म हो ही चुका था और गोपाल सेठ अपना लाभ कमा ही चुका था।

अपनी डायरी में कितने पन्ने रखवाये आपने ?

अरे ! इसमें पूछने की क्या बात है ? डायरी है तो ३६५ पन्ने रखवाने ही होंगे न ? रोज का एक·····। और कुछ पन्ने जानकारियों से भरे ।

बस ! यही तो गड़बड़ वाली बात है। गोपाल सेठ ने अपना रहस्य खोला मैंने मानव स्वभाव का थोड़ा बहुत अध्ययन किया है। साल के आखरी दिन तक नियमित डायरी लिखने वाला व्यक्ति लाखों में एकाध ही मिलेगा। सभी लोग साल के प्रारम्भ में डायरी लिखने का दृढ़ निश्चय करते तो जरूर हैं और शुरू के दिनों में लिखते भी हैं पर धीरे-धीरे उसमें खंड पड़ने लगता है। और कुछ दिनों बाद तो हमने रोज डायरी लिखने का निश्चय किया था यह भी लोग भूल जाते हैं। और यही सोचकर मैंने एक योजना बनायी। मेरी डायरी में जनवरी के ३१ पन्ने तो पूरे रहते हैं पर धीरे-धीरे उनकी संख्या क्रमशः घटने लगती है। और इस तरह करीब २०० पन्नों में ही हमारी डायरी का ३१ दिसम्बर आ जाता है। आम व्यक्ति को डायरी खरीदने का मानसिक सन्तोष मिल जाता है और हमें कम से कम कीमत में अच्छी चीज ग्राहक को देने का मानसिक समाधान मिल जाता है। ·····जय गोपाल····· ·····।

× × ×

अच्छे निर्णय लेना, उचित निश्चय करना···· जीवन में उचित तथा शुभ परिवर्तन लाने के लिए सिर्फ ये ही बातें काफी नहीं होतीं। बल्कि उस निर्णय को पूर्ण दृढ़ संकल्प के साथ अन्ततक धैर्य-पूर्वक निभाना भी उतना ही जरूरी है जितना कि

उचित निर्णय लेना। शास्त्रों में इसी को 'धृति-शक्ति' कहा गया है। हम यदि अपना आत्मपरीक्षण करें तो हमें पता चलेगा कि इसी 'धृतिशक्ति' के अभाव के कारण ही हमें अपने जीवन में अनेक 'अपयशों' का सामना करना पड़ता है। हममें से बहुत लोग बहुधा योग्य निर्णय लेने में पीछे नहीं हटते। अनेक विकल्पों में से योग्य विकल्प का चयन करने का काम हमारी बुद्धि भली-भाँति कर लेती है। उचित-अनुचित, योग्य-अयोग्य, हितकर-अहितकर का निर्णय बहुधा बुद्धि द्वारा उचित रूप से हो जाता है। पर उस उचित निर्णय पर दृढ़ रहकर उसे अन्त तक धैर्यपूर्वक निभाना हर किसी के बस की बात नहीं। 'इस साल शुरू से ही खूब जोरदार तथा नियमित पढ़ाई करूँगा'—यह निर्णय हर विद्यार्थी की बुद्धि लेती है। पर कुछ ही दिनों बाद अपने इस अति उचित निर्णय का पूर्ण विस्मरण न करने वाले कितने विद्यार्थी मिलते हैं? अच्छी-अच्छी बोधप्रद-पुस्तकें पढ़ने का निश्चय तो बहुत लोग करते हैं पर, उन पुस्तकों के अन्तिम पन्ने तक कितने लोग पहुँच पाते हैं? उपन्यास या अन्य मनोरंजक पत्र-पत्रिकाओं को छोड़ दिया जाय तो बहुतांश पुस्तकों के सिर्फ पहले के कुछ पन्ने ही पढ़े गये दिखलाई देते हैं। इस धृतिशक्ति के अभाव में अच्छी बुद्धिशक्ति होकर भी नहीं होने के समान ही होती है। ठीक वैसे ही जैसे बिना स्याही के पेन··· अनुपयोगी।

× ×

अपने जीवन को यदि सत्य की, परम कल्याण की दिशा में मोड़कर जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करना हो तो इस धृतिशक्ति का बहुत अधिक महत्व है। क्योंकि इस मार्ग पर प्रत्यक्ष चलना याने, कठोपनिषद की भाषा में कहा जाय तो तलवार की धार पर चलने जैसा ही कठिन है। कोई न कोई झूठे-सच्चे, छोटे-मोटे बहाने बनाकर या ढूँढ़कर एक सामान्य व्यक्ति इस मार्ग पर प्रत्यक्ष चलना टालने की कोशिश करता ही है। और इसीलिए बुद्धि द्वारा लिये गये उचित निर्णय अन्त में व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

'घड़ी-घड़ी बिछड़े निश्चयों अंतरीचा' अर्थात् पल-पल में मन के निश्चयों की डगमगाने की स्थिति पैदा होती है - महान संत श्री समर्थ रामदास के अनुसार साधक की स्थिति पल-पल अपने निर्णय पर डगमगाती है —

श्रीमद्भगवतगीता में अनेक जगहों पर बुद्धि तथा धृति शब्द का प्रयोग एकसाथ इसीलिए किया गया है। धृति शब्द की सुन्दर व्याख्या आचार्य शंकर ने अपने भाषा में की है -

'यथा अवसादंप्राप्तानि देहेन्द्रियाणि ध्रियते सा (धृतिः) ····(अ. १३, श्लोक ६ शांकर भाष्य,'

अर्थात् शरीर तथा इन्द्रियां थकने पर भी या विमनस्क होने पर भी जिस शक्ति के सहयोग से नियत कार्य व्यवस्थित रूप से पूर्णता को प्राप्त होते हैं उस शक्ति को धृतिशक्ति कहा जाता है। कठिन कार्यों या जिन कार्यों की हमारे शरीर को आदत नहीं होती ऐसे कार्यों को करते समय शरीर तथा इन्द्रियाँ अवसादग्रस्त हो काम से जी चुराने का अवसर खोजती रहती हैं, ऐसे समय धृतिशक्ति शरीर तथा इन्द्रियों को निग्रहपूर्वक फिर से काम को पूर्ण करने हेतु उकसाती है और नियत कार्य अपनी पूर्णता को प्राप्त होता है।

मन को परमात्मा की ओर किस तरह एकाग्र किया जाय इस विषय में भगवत्गीता में बुद्धि तथा धृति के एकत्र उपयोग पर बल दिया गया है।

'संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः।
मनसैव इन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥

शनैः शनैः उपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥
(६—२४, २५)

अर्थात् कल्पनाशक्ति द्वारा निर्मित कामनाओं का पूर्णतः त्याग कर, मन की सहायता से सभी इन्द्रियों को चारों ओर से बांधकर क्रमशः धृतियुक्त बुद्धि से मन को इस अनित्य, दुःखदायी संसार के मोह से मुक्त कर ईश्वर-चिंतन में लीन करना चाहिए। दूसरी बातों का चिंतन भी नहीं करना चाहिये।

यदि बुद्धि का साथ देने के लिए धृतिशक्ति उपलब्ध न हो तो यह कार्य-सिद्ध होना असंभव ही है।

पर इसका दूसरा पहलू यह भी है कि यदि योग्य बुद्धि का अभाव हो तो केवल धृतिशक्ति की उपलब्धता बहुत ही घातक सिद्ध होती है। वैसे व्यक्ति योग्य बुद्धि के अभाव में अनुचित निर्णय ले लेते हैं और फिर एक बार निर्णय ले लिया कि बस उसे आजीवन निभाने हैं। जिद्दी दूराग्रही, स्व-मतान्ध लोगों का समावेश इस श्रेणी में होता है। अतः बुद्धि याने नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य, उचित-अनुचित में योग्य चुनाव कर नित्य, सत्य तथा उचित क्या है यह दर्शाने वाली विवेकशक्ति अत्यंत आवश्यक है। पर धृतिशक्ति के अभाव में व्यावहारिक जीवन में बुद्धि अपंग सिद्ध हो सकती है।

× × ×

यदि संतों-महात्माओं के जीवन की ओर दृष्टिपात किया जाय तो हमें उनके जीवन में धृतिशक्ति की प्रबलता दिखाई देती है, और इसी में उनके जीवन की सफलता का रहस्य भी निहित है। डाकू रत्नाकर वाल्मीकि कैसे बना? महर्षि नारद द्वारा दिये गये मंत्र को उसने दृढ़ निश्चय के साथ, इन्द्रियों के विरोधों को पूर्णतः उपेक्षित कर एकासन में बैठकर इतने वर्षों तक मंत्रजाप किया कि उसके शरीर के चारों ओर दीमकों ने अपने घर के पहाड़ के पहाड़ बना लिये और उसे पता तक नहीं चला। कितनी अद्भुत धृतिशक्ति', रामायण के समान अति उच्च श्रेणी का, हजारों वर्षों से देश-विदेश के करोड़ों लोगों के हृदयों पर अपना साम्राज्य स्थापित करने वाला महाकाव्य ऐसे ही तो नहीं तैयार हो जाता? प्रागैतिहासिक कालीन ये बातें हमें भले ही अतिशयोक्तिपूर्ण लगती हों, फिर भी, पिछली शताब्दी में भगवान श्रीरामकृष्ण तथा उनके शिष्यों के जीवन में इसी प्रकार के कई, साधनोद्यम, के प्रत्यक्ष उदाहरण दिखाई देते हैं जिनमें उनकी अद्भुत् धैर्यशक्ति के बल पर सुदीर्घ काल तक किये गये कार्य नजर आते हैं। इन कार्यों का वर्णन जो आधुनिक, वैज्ञानिक विचारवान तथा आलोचक बुद्धि के लोगों ने किया है, उन महापुरुषों के चरित्र में हमें मिलते हैं। इससे यह सिद्ध हो ही जाता है कि प्राचीन काल के ये वर्णन सिर्फ कल्पना विलास ही हो सकते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इस धृतिशक्ति के अपार महत्व को दर्शानेवाली एक बोधकथा भगवान रामकृष्णदेव हमेशा बताया करते थे। एक किसान था। एक साल उसके गाँव में बहुत दिनों तक पानी नहीं बरसा। उसके खेत की सारी फसल सूखकर नष्ट होने की स्थिति में आ गयी। तब उसने पास से ही बहने वाले छोटे से झरने से एक नहर खोदकर खेत में पानी लाने का निश्चय किया। एक दिन बहुत सवेरे से ही वह इस काम में जुट गया। काम करते-करते दोपहर हो गयी। किसान की पत्नी ने संदेश भिजवाया—भोजन का वक्त हो चला है, काम बाद में होता रहेगा, पहले स्नान कर खाना खा लीजिए।

किसान ने उल्टे संदेश भिजवाया—फसल सूख रही है आज यह काम निश्चित ही पूरा होना चाहिये। स्नान भोजन तो बाद में भी होते रहेंगे। पहले काम पूरा करूँगा—यही मेरा निश्चय है।

थोड़ी देर बाद पत्नी ने फिर संदेश भिजवाया—'जल्दी घर आइये, काम तो रोज लगा रहता है, कल भी पूरा हो सकता है।'

पर फिर भी किसान ने नहीं माना। तब वह खुद खेत पर आयी और उससे जिद करने लगी कि वह घर चलकर खाना खा ले। तब किसान ने चिढ़कर अपनी पत्नी पर इस तरह कुदाली उठाई मानो वह उसे मार ही देगा। पति का रौद्ररूप देखकर पत्नी घबड़ाकर वहां से चली आयी। भूख-प्यास, धूप-गर्मी किसी भी बात की फिकर किये बिना उसने अपना काम जारी रखा। शाम होने के थौड़ी देर बाद उसका काम पूरा हुआ और झरने का शीतल जल कल-कल करता हुआ सूखते हुए खेत में पहुँचकर फसल को नवजीवन प्रदान करने लगा। काम पूरा कर वह किसी सुखी, संतोषी, प्रफुल्ल मन से स्नान-भोजन हेतु घर की ओर चल पड़ा।

इस किसान के खेत के पास वाले खेत के किसान को भी झरने से नहर खोदकर खेत तक पानी लाने की युक्ति पसंद आयी थी। उसकी बुद्धि ने भी योग्य निर्णय दिया था; पर नहर खोदने का कार्य शुरू करने के बाद जब पत्नी ने स्नान भोजन हेतु बुलाया तो बुद्धि के निर्णय को उपेक्षित कर वह घर चला गया। उसका काम अधूरा ही रह गया और उसके खेत में कभी भी पानी आ ही न सका। धृतिशक्ति के अभाव में सब कुछ जानते-बूझते भी अपने लक्ष्य को वह प्राप्त नहीं कर सका। अपने उद्देश्य की पूर्ति कर ही नहीं सका।

●

मनुष्य और परमेश्वर की व्याखा; मनुष्य एक असीम वृत्त है, जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है, लेकिन जिसका केन्द्र एक स्थान में निश्चित है; परमेश्वर एक ऐसा असीम वृत्त है, जिसकी परिधि कहीं नहीं है, परन्तु जिसका केन्द्र सर्वत्र है।

स्वामी विवेकानन्द

३० जुलाई, गुरु पूर्णिमा पर विशेष

सद्गुरु शरण जीवोद्धार का प्रथम सोपान

—आचार्य मदन साहित्य भूषण

कलि पावनावतार गोस्वामी तुलसी दास जी ने श्री रामचरित मानव को प्रारम्भिक चौपाइयों में सर्वप्रथम श्रीगुरु बंदना एवं उनकी महिमा का गुणानुवाद करते हुए जन-मानस को यह बताने की चेष्टा की है कि जीवोद्धार के लिए प्रथम सोपान श्री सद्गुरु शरण ही है और तदुपरान्त उपासना-आराधना का स्थान है।

इसी संदर्भ में उत्तरकांड के अन्तर्गत श्री गरूड़-भुसुंडी संवाद के माध्यम से 'गुरु बिनु भवनिधि तेरे न कोई, जो विरंचि संकरसम होई' का सिद्धांत निरूपित है।

चौरासी लाख योनियों में भ्रमणात्मक आवागमन के दुस्सह कष्टों ("जनमत भरत दुसह दुख होई") से मुक्ति पाने हेतु भगवत्-शरणगति श्री गुरुदेव के माध्यम से ही संभव है। इसी प्रतिपाद्य विषय पर भगवद्-प्रेमियों के सम्मुख किंचित प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है जिसका मूलाधार आदिकाल से लेकर अब तक के परिभाषित संत-महात्माओं, ऋषि-मुनियों एवं भगवद् उपासना तथा गुरु-वन्दना के छन्दादि हो है।

'नदियाँ एक, घाट बहुतेरे' एवं हरि अनन्त, हरिकथा अनन्ता के अनुसार भगवद्-उपासना एवं भगवद्-प्राप्ति के असंख्य साधन हैं, अगणित मार्ग हैं तथा नाम भी अनन्त हैं—'यह सर्वविदित है, सर्वज्ञात है। किन्तु मात्र इतनी जानकारी से ही मानव का कल्याण संभव नहीं है एवं जीवन उद्धार भी असंभव है।

वस्तु, मुक्ति या भक्ति की उपलब्धि के निमित नाविक या घाटों की गिनती करते रहने से, संकल्प-हीन ऊहापोह में पड़े रहने से उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। किसी एक नाव, एक नाविक और एक घाट के प्रति श्रद्धा-निष्ठा एवं विश्वास के साथ सम्पर्क स्थापित कर समर्पित हो जाने पर ही कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। साधना-उपासना तभी फलवती हो सकती है जब साधक अर्जुन जैसे लक्ष्यवेधक की भाँति, आराधना की अनन्यता को एकाग्रचित से तपोनिष्ठ हो, विदेहराज श्री जनक की तरह निर्लिप्त-निर्लेप रहने की भावना का निरन्तर अभ्यास करते हुए उपास्य का सान्निध्य प्राप्त करने हेतु अग्रसर रहे।

नदी, भवसागर-रूपा है, नाविक श्री गुरुदेव हैं और नाव या घाट, नाम-निष्ठा, मंत्रनिष्ठा ही उपासना की पद्धति है। जिस प्रकार यात्री किसी नाव या नाविक का सहारा लेकर गन्तव्य घाट के किनारे पहुँच जाता है, उसी प्रकार भवसागर के पार जाने वाले यात्रियों को चाहिए कि वे किसी कुशल नाविक अर्थात् सिद्ध गुरुदेव—'पानी पीना छानकर, गुरु करना जानकर' की कहावत के अनुसार समझ-बूझकर, पर्याप्त सत्संग कर शिष्यत्व ग्रहण करे और प्राप्त दीक्षांत एवं तदनिरूपित निर्धारित

उपासना पद्धति के सहारे पूरी निष्ठा से उपास्य देव की शरण में आत्मसमर्पण कर दे अन्यथा, कौन अच्छा है और कौन बुरा है, के ऊहापोह में उसका अमूल्य जीवन निरर्थक एवं निष्फली समाप्त हो जायेगा। जीवनकाल में ही दीक्षाग्रहण कर, पथ अनुगामी बन जागना श्रेयष्कर तथा विशेष सिद्धि-प्रदायक होता है कारण कि वृद्धावस्था तो अशक्ति, रोग और विविध पारिवारिक चिन्ताओं से ग्रसित-त्रसित रहती है।

जिस प्रकार विद्युत आपूर्ति के लिए एक केन्द्र होता है और कनेक्शन के माध्यम से वह विद्युत शक्ति प्रवाहमान होती हुई उपभोक्ता के कक्ष में प्रकाश बिखेरने लगती है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान प्रभु से सम्बद्ध सिद्धसाधक, अपने सम्पर्क सान्निध्यों में आनेवाले को दीक्षा-प्रकाश से ओत-प्रोत कर आलोकित कर देते हैं, किन्तु वैसे सिद्ध पुरुष का सान्निध्य प्राप्त करने वाले को स्वयं उसके योग्य बनना होगा। गुरु की पात्रता-कसौटी पर खरा उतरना होगा और तभी लक्ष्य की उपलब्धि संभव है। अन्यथा सिद्ध पुरुष, मरुस्थल में बीज क्यों बोना चाहेगा निरर्थक समय नष्ट कर अपनी साधना का निष्फल प्रयोग क्यों करेगा? कुपात्र को शिष्य बनाकर कुख्याति का शिकार क्यों बनेगा?

यह जग विख्यात तथ्य है कि आध्यात्मि सद्-गुरु, कुशल नाविक बनकर शिष्य को भवसागर के पार ले जाने में सक्षम होते हैं। साधना नाव के सहारे शिष्य को मार्ग-दर्शन कराते, प्रशस्त मार्ग पर निरापद, निष्कंटक, सुखद एवं सहज ढंग से लक्ष्यवेध तक पहुँचा देते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक इतिहास में आज तक जितने देवता-सृष्टिकर्ता आदि, ऋषि-मुनि और संत-महात्माओं की गाथाओं की चर्चा की गयी है, वे सभी श्री सद्गुरु की महिमा के गुणगान से मंडित हैं तथा गुरु की छत्र-छाया में सफलता सोपान की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचाने की प्रक्रिया में गुरु की विशेषताओं को ही सक्षम बताया गया है। गुरु महिमा की महत्ता समझे बिना मनमुखी साधना करने वाले की वही दुर्दशा होती है जो महाभारत युगीन साधक एकलव्य की हुई थी।

यद्यपि उसने महात्मा द्रोणाचार्य को मनमुखी गुरु मानकर उनकी पाषाण मूर्ति की स्थापना कर उसके सामने अपनी साधना की थी। किन्तु साकार गुरु का सान्निध्य उसे सुलभ न था और वह साधना भौतिक थी आध्यात्मिक नहीं थी। तब इस साधना के दुष्परिणाम का सामना करना पड़ा था। अस्तु जहाँ तक आध्यात्मिक साधना की बात है, वहाँ तो

भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक इतिहास में आज तक जितने देवता-सृष्टिकर्ता आदि, ऋषि-मुनि और संत-महात्माओं की गाथाओं की चर्चा की गयी है, वे सभी श्री सद्गुरु की महिमा के गुणगान से मंडित हैं तथा गुरु की छत्र-छाया में सफलता सोपान की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचाने की प्रक्रिया में गुरु की विशेषताओं को ही सक्षम बताया गया है। गुरु महिमा की महत्ता समझे बिना, मनमुखी साधना करने वाले की वही दुर्दशा होती है जो महाभारत युगीन साधक एकलव्य की हुई थी।

साकार गुरु सान्निध्य का महत्व विशेष रूप से विचारणीय एवं अनुकरणीय है।

यों मानव जीवन को मार्ग दर्शन देने वाले गुरु, चार श्रेणियों में विभक्त हैं—प्रथम गुरु माता को माना गया है, जो शैशवास्था में पारिवारिक परिचय का सर्वप्रथम ज्ञान देती है—जैसे माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची, दादा-दादी आदि विभिन्न सगे-सम्बन्धियों का ज्ञान कराती है और अपने स्वभाव-जन्य प्राकृतिक गुणों को उसमें प्रतिष्ठापित कर जीवनोद्देश्य का मार्ग प्रशस्त करती है। दूसरा गुरु पिता को कहा गया है जो ऐश्वर्य, कुल-मर्यादा,

जाति-संस्कार आदि का ज्ञान कराते हैं। तीसरा-गुरु वह होता है जो विद्या ज्ञान द्वारा मानव को पशुत्व से ऊपर उठकर मानवता का पाठ पढ़ाता है। इस प्रकार तीन गुरु ऐसे होते हैं जो सर्वप्रकारेण उदर एवं परिवार पालनादि गार्हस्थ धर्म का ज्ञान कराकर भौतिकवाद अर्थात् माया में अनुरक्त करने की प्रक्रिया अपनाते हैं, जो जीवन को आवागमन से मुक्ति नहीं दिलाने बल्कि माया के बंधनों में डालकर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण के निमित्त पुनः पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं, किन्तु चौथा गुरु उन तीनों से सर्वथा भिन्न होता है जो दिव्य गुण-सम्पन्न विशिष्ट व्यक्ति के रूप में जाना जाता है और माया में अनुरक्त प्राणी को अध्यात्म एवं ईश्वरोपासना की ओर उन्मुख करती है और उसकी मनोभावना को मोड़कर प्रभुचरणों में अनुशरण करने की पद्धति सिखाता है जो जीवन मुक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका प्रमाणित होती है।

यों, यह सर्वविदित है कि गुरु शब्द में निहित दो अक्षर अर्थात् 'गु' का अर्थ अंधकार और 'रु' का अर्थ प्रकाश अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली अद्भुत शक्ति को ही 'गुरु' की संज्ञा दी गयी है किन्तु या विद्या-सा मुक्तये का वास्तविक अर्थ है—वह विद्या जो बंधन मुक्त करावे अर्थात् मायाजनित विकारपूर्ण बंधनों से छुटकारा दिलाकर, ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कराने में सक्षम हो—वैसी विद्या का पाठ पढ़ाने के लिए चौथे प्रकार के आध्यात्मिक गुरु ही सक्षम होते हैं। दुर्लभ मानव-योनि प्राप्त करने वाले सौभाग्यशालियों को जन्म लेने के उद्देश्यों की सार्थकता प्रमाणित करने हेतु वास्तविक कर्तव्य बोध कराकर ईश्वरोपासना एवं भक्ति-मुक्ति के लक्ष्यवेध का ज्ञान, वही चौथे योगी गुरु कराते हैं।

कहावत है—कीचड़ से कीचड़ की धुलाई नहीं हो सकती। अतः जो व्यक्ति स्वयं गृहस्थी प्रपंची मायाजाल में कोल्हू के बैल की तरह निरन्तर भांवरे दे रहा है, वह दूसरों को मायामुक्त कैसे कर सकता है। वैसे घरेलू या वंश-पारम्परिक चेलवाही करने वाले व्यावसायिक गुरुओं को तिलांजलि देकर किसी निःस्वार्थ त्यागी एवं विरक्त सन्त की खोजकर प्रभु को शरणागति ग्रहण करनी चाहिए। किन्तु वैसा प्रयास आरम्भ करने के पूर्व अपने को भी योग्य बनाना होगा। तामसी आहार का परित्याग कर सात्विकी आहार सेवी बनना होगा। मन के अहंकार को निकाल कर विनम्र और विना जिज्ञासु बनना होगा। सत्संग की ओर उन्मुख होकर प्रभु चिंतन करते रहने से वह शुभ घड़ी आ जायेगी जब सद्गुरु के दर्शन सुलभ होंगे।

जैसा अन्न, वैसा मन की अनुभूत कहावत को सर्वदा स्मरण रखें, तभी सद्गुरु को ब्रह्मा' विष्णु और महेश एवं परात्पर ब्रह्म के रूप में निरूपित किया गया है। इसीलिए, श्री गुरु-वन्दना के प्रचलित श्लोक प्रायः सर्वत्र सर्वप्रथम स्मरणीय हो गये हैं—

गुरु-ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः
अखंड मंडलाकारं व्याप्त येन चराचरम।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मैश्री गुरुवे नमः।
अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षु रोन्मलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक स्वरूप आषाढ़ की पूर्णिमा को श्री गुरु पूजनोत्सव पर्व की परम्परा प्राचीनकाल से ही प्रतिष्ठापित है। उस दिन अगाध श्रद्धा और पूरी निष्ठा से पंचोपचार पद्धति से बिधिवत पूजा की जाती है। जिससे शिष्य परम्परा संस्कारित होकर, नयी प्रेरणा पल्लवित करती है और साधना पथ पर निरन्तर बढ़ते रहने के संकल्प की पुनरावृत्ति भावना की कुंडलिनी जागृत होती है।

श्री सद्गुरु की महत्ता को उजागर करने वाला पद—'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काको लागूँ पांय। बलिहारी वा गुरु की जिन गोविन्द दियो बताय।' भी गुरु महिमा की गुरुता प्रमाणित करने के लिए प्रसिद्ध है।

रामायण

—स्वामी नित्यज्ञानानन्द
बेलुड़ मठ

रामायण एवं महाभारत की इतिहास की संज्ञा दी गयी है क्योंकि इनमें पूर्व महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का कीर्तन किया गया है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, 'रामायण एवं महाभारत प्राचीन आर्य-जीवन और ज्ञान के दो ऐसे विश्व-कोष हैं, जिनमें एक ऐसी उन्नत सभ्यता का चित्र खींचा गया है, जो मानव-जाति को अब भी प्राप्त करनी है।' प्रस्तुत प्रबन्ध में रामायण के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी हम प्राप्त करेंगे।

रामायण महाकाव्य

रामायण को आदिकाव्य कहा गया है। इसके पूर्व भी संस्कृत भाषा में काव्य का अभाव न था; वेदों का अधिकांश काव्यमय ही है। लेकिन सर्व सम्मति से रामायण ही कविता का प्रारम्भ माना जाता है क्योंकि लौकिक साहित्य में छन्द का निर्माण सर्वप्रथम रामायण से ही आरम्भ हुआ। महाकाव्य के नायक होते हैं बहुगुण सम्पन्न एवं सद्वंशजात तथा प्रधान रस होता है– श्रृंगार, वीर या शांत। साथ ही इसमें अन्यान्य रस, प्राकृतिक दृश्यावली, साँझ-उषा, दिवा-रात्रि, सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, नगर-सागर, वन-पर्वत, ऋतुएँ, विवाह, पुत्रलाभ तथा युद्ध आदि का काव्यमय चित्रण रहता है। रामायण में उक्त सभी लक्षण पाये जाते हैं; वस्तुतः महाकाव्य के लक्षणों का प्रथम प्रकाश रामायण में ही दिखाई पड़ता है। इसीलिए रामायण को आदि महाकाव्य कहा गया है। इसकी भाषा अत्यन्त प्राञ्जल और स्वच्छ-गतियुक्त है।

रामायण की रचना

रामायण महाकाव्य के रचयिता हैं महर्षि वाल्मीकि। महाकाव्य के प्रारम्भ में ही इसकी रचना के संबन्ध में एक रोचक प्रसंग आता है। एक समय की बात है कि सत्य-प्रेमानन्द मूर्त्ति देवर्षि नारद अपनी वीणा पर भगवन्नाम करते-करते महर्षि वाल्मीकि के आश्रय में उपस्थित हुए। महर्षि ने सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया तथा उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान करके उनसे पूछा—

"को ह्यस्मिन् प्रथितों लोके सद्गुणैर्गुणिसत्तमः।
धर्मज्ञश्च कृतश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥
उदाराचारसम्पन्नः सर्वभूतहिते रतः।
वीर्यवांश्च वदान्यश्च कश्चापि प्रियदर्शनः॥
जितक्रोधो महान् कश्च धृतिमान् कोऽनसूयकः।
संजातरोषात् कस्माच्च देवता अपि विभ्यति॥"

अर्थात् 'इस संसार में गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़-प्रतिज्ञ कौन है? सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हित साधक, विद्वान् सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है? मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसी की भी निन्दा नहीं करने वाला कौन है तथा संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते

हैं ?' इसके प्रत्युत्तर में तीनों लोकों का ज्ञान रखने वाले त्रिकालज्ञ नारदजी ने महर्षि वाल्मीकि से कहा—'आपने जिन बहुत से दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है उन सभी गुणों से युक्त पुरुष मिलना दुर्लभ है। किसी देवता को भी इन सभी गुणों से युक्त नहीं देखता हूँ। फिर भी इन सभी गुणों एवं इससे भी अधिक गुणों से विभूषित जिन एकमात्र नरचन्द्र को मैं जानता हूँ उनके बारे में आपको बताता हूँ—वे हैं इक्ष्वाकु वंशजात, 'राम' नामधारी एक नरेश।'

इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम गुणाकरः।
एभिरप्यधिकैश्चैव गुणैर्युक्तो महाद्युतिः॥"

इसके बाद देवर्षि नारद ने श्री रामचन्द्रजी की समुज्जवल पवित्र जीवन-कथा का संक्षेप में वर्णन करके महर्षि वाल्मीकि से विदा ग्रहण की और आकाशमार्ग से देवलोक चले गये।

नारदजी के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद निकटवर्ती तमसा नदी में अवगाहनार्थ जाते हुए महर्षि ने एक क्रौंच-युगल को प्रणय केलि में मग्न हो परस्पर का आलिंगन-चुम्बन करते हुए परमानन्द में मग्न देखा। महर्षि इस प्रणय-क्रीड़ा को देखकर अतीव आनन्दित हुए। इतने में ही कहीं से एक निषाद ने आकर नर-क्रौंच को उनके देखते ही देखते अपने वाण का निशाना बनाया। वह पक्षी खून से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और पंख फड़-फड़ाता हुआ तड़पने लगा। अपने पति की यह दशा देखकर क्रौंच-बधू शोकाभिभूत होकर करुण क्रन्दन करने लगी। महर्षि यह करूण दृश्य देख शोक विह्वल हो गये और उनकी दृष्टि जब इस क्रूर कर्म के कर्ता निष्ठुर निषाद की ओर गयी, तो उनके मुँह से निकल पड़ा—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुना देकमवधीः काममोहितम्॥"

अर्थात् 'हे निषाद! तुझे कभी भी शाश्वत शान्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, हत्या कर डाली।' उनके मुख से ये शब्द निःसृत होते ही महर्षि सोचने लगे—'इस पक्षी के शोक से पीड़ित होकर मैंने यह क्या कह डाला।' कुछ क्षण विचारकर उन्होंने अपने शिष्य भरद्वाज से कहा—'समान अक्षरों वाले चार चरणों में आबद्ध यह वाक्य शोक के आवेश में मेरे मुँह से निकल पड़ा है, अतएव यह श्लोक रूप होना चाहिए।' शिष्य भरद्वाज ने भी अपने गुरु के इस कथन का अनुमोदन किया। संस्कृत काव्य कुमार का यही उदय है। महाकाव्य की भाविनी-परम्परा का यही मूल-स्रोत है। तत्पश्चात् महर्षि ने तमसा में स्नान किया और उसी विषय का विचार करते हुए सशिष्य अपने आश्रम की ओर लौट पड़े।

आश्रम में पहुँचने पर धर्मज्ञ ऋषि वाल्मीकि जो अपने शिष्य के साथ बैठकर दूसरी-दूसरी बातें करने लगे; किन्तु उनका ध्यान उस श्लोक की ओर ही लगा था। इतने में ही अखिल विश्व की सृष्टि करनेवाले महातेजस्वी ब्रह्माजी महर्षि के समक्ष आविर्भूत हुए और हँसते हुए उनसे बोले—'ब्रह्मन्! तुम्हारे मुँह से निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोक रूप ही होगा; उसके लिए चिन्ता न करो। मेरी ही प्रेरणा से तुम्हारे मुँह से ऐसी वाणी निकली है। मुनिवर! तुमने नारदजी के श्रीमुख से जैसा सुना है, उसी के अनुसार तुम राम के सम्पूर्ण चरित्र का श्लोकबद्ध वर्णन करो। जिस बात को तुम नहीं जानते हो, वह भी तुमसे छिपी न रहेगी।' इसके बाद ब्रह्माजी ने निम्नलिखित भविष्यवाणी की—

"यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥"

अर्थात् 'इस पृथ्वी पर जबतक नदियों एव पर्वतों की सत्ता रहेगी, तबतक संसार में रामायण-कथा प्रचलित रहेगी।' यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

प्रथम कवि वाल्मीकि के हृदय की करुणा ही विश्व के आदि काव्य का आदि श्लोक बन गयी और उसके बाद महर्षि ने परम मनोहर एवं सुललित रामायण महाकाव्य की रचना की।

वैशिष्ट्य

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं तथा वाल्मीकीय-रामायण आदि महाकाव्य है। कवि के सच्चे रूप की कल्पना हमने वाल्मीकि से सीखी है और महाकाव्य के महत्त्व को हमने रामायण से ग्रहण किया है। यदि वाल्मीकि न होते तो हम कवि के वास्तविक स्वरूप तथा अभिराम आदर्श का कहां से सीखते? और यदि उनकी प्रसन्न-गम्भीर रामायण हमें नहीं मिलती तो हम महाकाव्य के माहात्म्य तथा गौरव को कैसे पहचानते? आदिकवि ने अपने काव्य-मन्दिर की पीठपर प्रतिष्ठित किया है—मर्यादा पुरुषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्र को। विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच रहकर व्यक्ति अपने शील के सौन्दर्य को किस प्रकार रक्षा कर सकता है, यह हमें वाल्मीकि ने ही सिखाया है। यदि आदिकवि ने इस चरित्र का चित्रण न किया होता तो हमें मञ्जुल गुणों के सामञ्जस्य का परिचय कहाँ से मिलता? रामायण महाकाव्य में रघुकुल तिलक राजा रामचन्द्रजी के अनुपम चरित्र का मनोहारी वर्णन किया गया है। इसमें चौबीस हजार श्लोक, पांच सौ सर्ग तथा उत्तरकाण्ड सहित सात काण्ड हैं।

धर्मनिष्ठता, कर्तव्यपरायणता, सहनशीलता और सतीत्व गौरव आर्यजीवन एवं आर्य सभ्यता के चिरन्तन वैशिष्ट्य हैं। रामायण में इन्हीं विशिष्ट गौरवों की प्रतिष्ठा महर्षि ने की है। राम और सीता भारतीय आदर्श हैं। सीता पवित्रता, पति-परायणता एवं सहिष्णुता के उच्चतम आदर्श हैं। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, "सीता भारतीय भाव की प्रतिनिधि हैं, मूर्तिमती भारतमाता हैं।... भारत में जो कुछ पवित्र है, विशुद्ध है, जो कुछ पावन है, उस सबका 'सीता' शब्द से बोध होता है।" तथा राम हैं धर्म के मूर्तिमान-स्वरूप; सत्य, न्याय, कर्तव्यपरायणता, धैर्य एवं विनय के जीवन्त-विग्रह। राम का अनुपम भ्रातृस्नेह, अपार्थिव भार्या-प्रेम, तथा अपरिसीम पितृभक्ति आर्यपुरुषों के लिए महान आदर्श-स्वरूप हैं। इसी तरह रामायण का प्रत्येक चरित्र एक-एक आदर्श का प्रतीक है।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य का नाम रामचरित, रामलीला, रामोपाख्यान आदि नहीं देकर इसका नामकरण 'रामायण' किया है। इसके पीछे निश्चय ही कोई गूढ़ उद्देश्य निहित है। राम+अयन=रामायण। अयन का अर्थ होता है गमन अथवा मार्ग। अतएव रामायण शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) राम का मार्ग अर्थात् वह मार्ग जिसका अनुसरण राम ने अपने जीवन में किया, (२) राम प्राप्ति का मार्ग अर्थात् वह मार्ग जिसका अनुसरण कर भक्तगण राम की प्राप्ति कर सकते हैं। धर्म-मार्ग का ही अवलम्बन भगवान् श्री राम ने अपने जीवन में किया था तथा इसी मार्ग का अवलम्बन कर भक्तगण राम तक पहुँच सकते हैं। अतएव रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने राम-चरित का अवलम्बन करके धर्म-मार्ग की ही प्रतिपादन किया है। अपने इस अभिप्राय का स्पष्ट उल्लेख महर्षि ने रामायण की भूमिका में निम्न-लिखित श्लोक द्वारा किया है—

"धर्मकामार्थ संयुक्तं पुण्य श्रवण कीर्त्तनम्।
श्रुतिरत्नचयाकीर्णं काव्यसागरमद्भुतम्॥"

अर्थात् 'यह अद्भुत महाकाव्य वेदप्रतिपादित सत्स्वरूप रत्नों से परिपूर्ण; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला; तथा श्रवण एवं प्रवचन करने से पुण्यजनक है।'

प्रचार एवं प्रभाव

रामायण की रचना पूर्ण होने पर महर्षि सोचने लगे,—कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष होगा, जो इस महाकाव्य का गायन करके जनसमुदाय में प्रचार कर सकेगा ?' उसी समय मुनिवेशधारी राजकुमार कुश और लव ने आकर उनको प्रणाम किया। उन दोनों भाइयों का स्वर बड़ा ही मधुर था तथा उनकी धारणाशक्ति अद्भुत थी। उन बालकों को सर्वथा योग्य समझकर महर्षि स्वरचित रामायण का अध्ययन एवं गान उन्हें कराने लगे। लव एवं कुश देखने में राम के ही सदृश थे। बिम्ब से उत्पन्न बिम्ब की तरह वास्तव में वे राम के ही दो रूप थे। शीघ्र ही उन्होंने सम्पूर्ण रामायण को कण्ठस्थ कर लिया तथा सुमधुर स्वर से उसका गान करने लगे। उनकी ख्याति दिनोंदिन बढ़ने लगी। फिर एक दिन भगवान् राम ने उन्हें अपने दरबार में बुलाकर उनसे रामायण गान का श्रवण किया।

जिस रामायण महाकाव्य में रामचरित रूपी मन्दाकिनी प्रवाहित होती हो, जिसके रचयिता वाल्मीकि जैसे महर्षि हों, जिसका गान एवं प्रचार करनेवाले राम की ही दो मूर्त्ति लव-कुश हों तथा जिसके श्रोता स्वयं भगवान् राघवेन्द्र हों—उस रामायण की प्रसिद्धि एवं प्रभाव में क्या कोई सन्देह हो सकता है? विश्वकर्ता ब्रह्माजी की भविष्यवाणी आज अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई है। ब्रह्माजी ने कहा था—जबतक इस पृथ्वी पर नदी, पर्वत विराज करेंगे तबतक रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा। आज सम्पूर्ण विश्व में रामायण का प्रचार और प्रभाव है। आर्य नर-नारी के जीवन में रामायण में कैसा अपरिसीम प्रभाव विस्तार किया है, इसका प्रमाण भारतवर्ष में सर्वत्र विद्यमान है। भारतवर्ष की ऐसी कोई भी प्रादेशिक भाषा नहीं है जिसमें रामायण की कहानी लिपिबद्ध नहीं हुई हो। एकमात्र तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने ही कितने लोगों का प्रेमाश्रु विसर्जन कराया है, इसकी कोई गणना नहीं है। ऐसा कोई भी हिन्दू नर-नारी नहीं है, जिसने रामायण कथा का कीर्तन अथवा श्रवण न किया हो। राम का भ्रातृस्नेह, पत्नीप्रेम एवं पितृभक्ति; लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति; भरत का त्याग; सीता की पवित्रता, सहिष्णुता एवं पतिपरायणता; तथा महावीर हनुमान की प्रभुभक्ति एवं सेवा-भारतीय जीवन में ये आदर्श आज भी देदिप्यमान हैं। ●

तेल की बूंद

एक दिन रामकृष्ण परमहंस अपने कुछ अनुयायियों के साथ बैठे थे। तभी एक अमीर आदमी आया और परमहंस जी को कुछ धन भेंट में देने लगा।

श्रीरामकृष्ण ने धन लेने से इंकार करते हुए कहा--'भाई मैं माया-मोह के चक्कर में नहीं पड़ूँगा। तुम्हारा धन मुझे अपने पथ से विचलित कर देगा।"

'आप तो संन्यासी हैं महाराज ! आपका मन तो सोना-चांदी के महासागर में रहकर भी पानी से अलग रहता है।' अमीर आदमी ने कहा।

'लेकिन तम तो यह भी जानते हो हो कि शुद्ध तेल भी पानी में रहकर अशुद्ध हो जाता है।' श्रीरामकृष्ण ने कहा।

अमीर आदमी रामकृष्ण परमहंस के तर्क से परास्त हो गया और निराश अपना धन लेकर चला गया।

देवलोक

—स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द

श्री श्री माँ के मन्दिर की पवित्रता रक्षा का निर्देश और माँ की महिमा के सम्बन्ध में महापुरुषजी—

पिछले दो वर्षों ने मठ में गंगा के किनारे श्री श्री माँ, स्वामीजी, और महापुरुष जी के सुन्दर मन्दिर निर्मित होने से यात्री-समागम बहुत बढ़ गया था। प्रातःकाल से लेकर प्रायः रात्रि पर्यन्त सब समय मठ में आना-जाना करते रहते। सभी मुक्ति-कामी हों ऐसा नहीं, कोई आता पर्यटक के रूप में, कोई आता गंगास्नानार्थी के रूप में, कोई दोपहर में संगमरमर के फर्श पर सो कर थोड़ा विश्राम करता एवं गपशप करता। तब मठ में केवल एक प्रवेश द्वार था, इसी लिए वह दरवाजा सब समय खुला रखना पड़ता। मठ में तब कोई चौकीदार या माली नहीं था, रखने की सामर्थ्य भी नहीं थी, इसीलिए फाटक सारा दिन खुला ही रहता था। रात्रि में एक आदमी ताला बन्द कर देता सबेरे खोल देता। यात्रियों के बीच कोई-कोई बार अवांक्षित व्यक्ति मठ में असमय आकर अनेक प्रकार की अप्रिय परिस्थिति की सृष्टि करते दिखाई देते। मठ के अधिकारीगण इस सब के प्रतिकार के विषय में विचार कर रहे थे इसी समय एक दिन सायंकाल तीन बजे मां के मन्दिर से जोर शोर की आवाज सुनी गई। जल्दी-जल्दी जाकर देखा कि कई साधु लोग यह आवाज कर रहे थे। उसके बीच देवेन महाराज भी थे। वे तब माँ के मन्दिर में सेवा पूजा करते। सुना गया कि, वे दोपहर में मन्दिर बन्द कर खाने गए हैं तभी एक युवक (शायद पागल) मठ में घुसकर श्री श्री मां के मन्दिर में दरवाजे के ऊपर और दीवाल पर चाक से बड़े-बड़े अक्षर में 'गाली-गलौज' लिख दिया था। देवेन महाराज सायं तीन बजे के लगभग माँ के मन्दिर में आकर देखा कि मन्दिर की दीवाल पर चाक से 'गाली-गलौज' लिखा, एव एक आदमी सोया हुआ है। उनको देखकर वह आदमी भागने लगा। देवेन महाराज चिल्लाकर उसको पकड़ने की चेष्टा करते ही वह दौड़कर भागने लगा। रजनीबाबू अपने घर से निकल आए और भी कई साधु मिलकर उस आदमी को गेट के बाहर कर दिया। उसी समय गोलमाल सुनकर महापुरुष महाराज भी असमय में आकर एक नजर में ही सभी बात समझ गए एव खूब विरक्ति प्रकाश करते हुए तिरस्कार के स्वर में बोले : 'तुमलोग मठ में रहकर क्या करते हो ? यह सब थोड़ा देख नहीं सकते ? भविष्य में इस प्रकार कोई जिससे माँ के मन्दिर को कलुषित या गंदा न करें। माँ साक्षात भगवती, यहां नित्य निवास करती हैं। बाबाजी लोग, सावधान। उनकी सेवा में त्रुटि मत करो व क्या थी यह तुम लोग कुछ नहीं जानते हो, एक मात्र ठाकुर ही माँ को जानते थे, और स्वामी जी ने कुछ समझा था। स्वामीजी पाश्चात्यदेश में जाने के पहले एक मात्र माँ को बोले थे एवं उनका

आशीर्वाद लेकर समुद्र पार गए थे। मां ने भी उनको प्राण खोलकर आशीर्वाद देकर कहा था, "बेटा, तुम विश्वविजयी होकर लौटना, तुम्हारे मुँह में सरस्वती बैठें।" वैसा ही हुआ था। माँ के आशीर्वाद से स्वामीजी विश्वविजयी हुए थे। स्वामीजी कभी यह भी कहते, "मां ठाकुर से भी बढ़कर हैं"—इतनी गम्भीर थी उनकी श्रद्धा माँ के ऊपर! ठाकुर ने कहा था, "नहबत में जो हैं, वह यदि किसी कारण किसी के ऊपर विपरीत हो तो उसकी रक्षा करना मेरे लिए भी साध्यातीत है।"···· माँ तो सभी की माँ थी। उनकी कितनी दया, कितनी क्षमा और क्या ही अद्भुत सहनशीलता थी। माँ को हमलोगों ने कितना जाना है? परन्तु उन्होंने कृपा करके इतना समझा दिया है कि, वे साक्षात् जगन्माता। उनका स्वरूप क्या है यदि वे दया करके समझा न दें तो समझने का कोई उपाय नहीं है। इसी प्रकार उस दिन मां के भाव में भावित होकर उस दिन अनेक बातें कहीं थी। अन्य एक समय माँ के शुभ जन्मतिथि को सबेरे से ही महापुरुषजी के मुँह से 'माँ माँ' का शब्द सुना जा रहा था—मानो मातृगत प्राण एक शिशु!

इस प्रकार सभी को अनेक उपदेश देकर वे खूब भारी प्राण से गम्भीर भाव से मठ में लौट गए एवं साथ ही साथ प्रवीण लोगों के साथ परामर्श करके दोपहर बारह बजे से सायं तीन बजे तक गेट बन्द करने का निर्देश दिया एवं देवेन महाराज को बुलाकर कुछ दिन दोपहर में श्री श्री माँ के मन्दिर में पहरा देने की बात कही। इस व्यवस्था का अच्छा परिणाम हुआ।

हाथ जोड़ कर आंख मूँद कर प्रार्थना कर रहे थे: 'माँ, माँ, महामाया! जय माँ, जय माँ! हमलोगों को भक्ति, विश्वास, ज्ञान, विवेक, अनुराग ध्यान, समाधि दीजिए। ठाकुर के इस संघ का कल्याण करिए—समग्र जगत का कल्याण करिए, जगत में शान्ति की व्यवस्था कीजिए।' बाद में बहुत देर तक चुप रह कर आँख बन्द कर पुनः बोले थे: 'हमलोगों को भक्ति नहीं है, इसीलिए इस सब दिन का ठीक-ठीक माहात्म्य समझ नहीं पाते। आज क्या ऐसा वैसा दिन है। महामाया का जन्म दिन। जीव जगत के कल्याण के लिए स्वयं महामाया ने आज के दिन जन्म ग्रहण किया था। मनुष्यलीला समझना बड़ा कठिन है। वे कृपा कर न समझाएँ तो कौन समझेगा? क्या ही साधारण भाव से ही वे रहती थीं! हमलोग उनको क्या समझेंगे? एकमात्र ठाकुर ही माँ को ठीक-ठीक समझते थे।····· हमलोगों की माँ का नाम "सारदा" यह माँ ही स्वयं सरस्वती। वे कृपा करके ज्ञान देती हैं—ज्ञान अर्थात् भगवान को जानना। इसी ज्ञान के होने पर ठीक-ठीक पक्की भक्ति सम्भव। ज्ञान नहीं होने से भक्ति नहीं होती। शुद्ध ज्ञान और शुद्धा भक्ति एक चीज है—माँ की कृपा होने से ही वह होना सम्भव है। माँ ही ज्ञान देने की मालिक है।'

श्री श्री माँ के देहत्याग के बाद उनके अदर्शन की वेदना प्रति भक्त-हृदय में श्रीभगवान की विरह-व्यथा जिससे स्थाई हो, उसी अभावबोध जिससे साधू-भक्तों के जीवन की गति उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूति की ओर चालित हो, प्रत्येक के प्राणों में विवेक-वैराग्य का भाव जगा दे, इसके लिए महापुरुषजी सभी को नाना प्रकार से उपदेश देते। वे १२-८-१९२० तारीख के एक पत्र (स्वहस्त लिखित) लिखा था: 'जो भक्त उनके (श्री श्री माँ के) अभाव का जितना दुःख अनुभव करेगा वे उनको उतना ही अधिक देख पाएगा और हृदय में शान्ति का अनुभव करेगा; कारण वे साधारण मानवी नहीं, साधिका नहीं, सिद्धा भी नहीं, वे नित्य सिद्धा—उसी आद्या-

शक्ति का एक अंश-प्रकाश ·· इसलिए उनकी कृपा जिनको मिली है, उनकी जो अहैतुकी मातृस्नेह अनुभव किया है, वे धन्य हुए हैं। सर्वभूत की अन्तरात्मा वही कुल कुण्डलिनी शक्ति, उसी जगज्जननी का अहैतुक स्नेहपरवश होकर जिस भक्त को एकबार श्रीकरकमल द्वारा स्पर्श किया है उनका चैतन्य हो गया है या होगा ही होगा, यही मेरा पूर्ण विश्वास है। श्री श्री माँ जगज्जननी, वे ध्यानगम्या, मनको निरोध करके अन्तरतम प्रदेश में डुबा देने से ही उन जगन्माता का दर्शन सम्भव— इसी प्रकार अनुप्राणित होने के लिए वे सबको उपदेश देते।

पवित्र भावना

देवरहवा बाबा नाम के एक प्रसिद्ध संत थे। वे प्रायः गंगा, यमुना या सरयू नदी में बांस के ऊँचे मचान पर मड़ई डाल कर निवास करते थे। प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर वे गंगा में मचान बना कर रह रहे थे। उसी मचान से वे जनता तक अपने सन्देश प्रसारित करते थे। लोग मन्त्रमुग्ध होकर उनके उपदेशों का श्रवण कर रहे थे। एक श्लोक की व्याख्या करते हुए उन्होंने इस संसार के समस्त प्राणियों को ईश्वर-दर्शन की प्रेरणा दी। दूसरे दिन उनका उपदेश पुनः प्रारम्भ हुआ। इसी बीच एक कुतिया उधर से गुजरी। वह बहुत ही दुबली और कमजोर थी उन्होंने अपने शिष्यों को, उसे पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। शिष्य उस कुतिया को पकड़ कर ले आये। संत ने विधिपूर्वक उसकी पूजा की। उसे नित्य नवीन भोग उसी प्रकार मिलने लगे जैसे वह भगवान ही हो। संत की इस भावुकता और प्रत्येक प्राणी में ईश्वर की पवित्र-भावना को देखकर लोग मुग्ध हो गये।

संजीव कुमार

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड
इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७००००६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।